योगविद्या

वर्ष 7 अंक 2
फरवरी 2018
सदस्यता डाकखर्च – रु100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2018

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 58 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर : गंगा दर्शन में श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, 1977

अन्दर के रंगीन फोटो 1-3: गंगा दर्शन के दृश्य;
4: गंगा दर्शन में स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, 2016

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

सच्ची शिक्षा

शिक्षा जीवन रूपी वृक्ष का मूल है, संस्कृति फूल और विवेक उसका फल। शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को उच्चतर संस्कारों और संस्कृति से सम्पन्न बनाना है। सच्चा मनुष्य बनने की शिक्षा ही सच्ची शिक्षा है। इसका लक्ष्य बच्चों की बौद्धिक क्षमताओं को निखारना और उन्हें धर्मनिष्ठ, निष्कपट, निर्भीक तथा आत्म-संयत बनाना है। शिक्षा को मानव-निर्माण एवं चरित्र-निर्माण का ऐसा माध्यम होना चाहिए, जिससे बच्चों के जीवन के शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक पहलुओं का सम्पूर्ण विकास हो सके।

शिक्षा द्वारा मनुष्य की बुद्धि, भावना और कर्म का परिष्कार होना चाहिए। शिक्षा इस प्रकार सुनियोजित होनी चाहिए कि इससे सादा जीवन और उच्च विचार की संस्कृति विकसित हो सके। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो बच्चों को अपने वातावरण से समायोजन बैठाने, जीवन-संघर्षों का सामना करने तथा आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने हेतु सहायक हो।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर-811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद-121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 7 अंक 2 · फरवरी 2018
(प्रकाशन का 56 वाँ वर्ष)

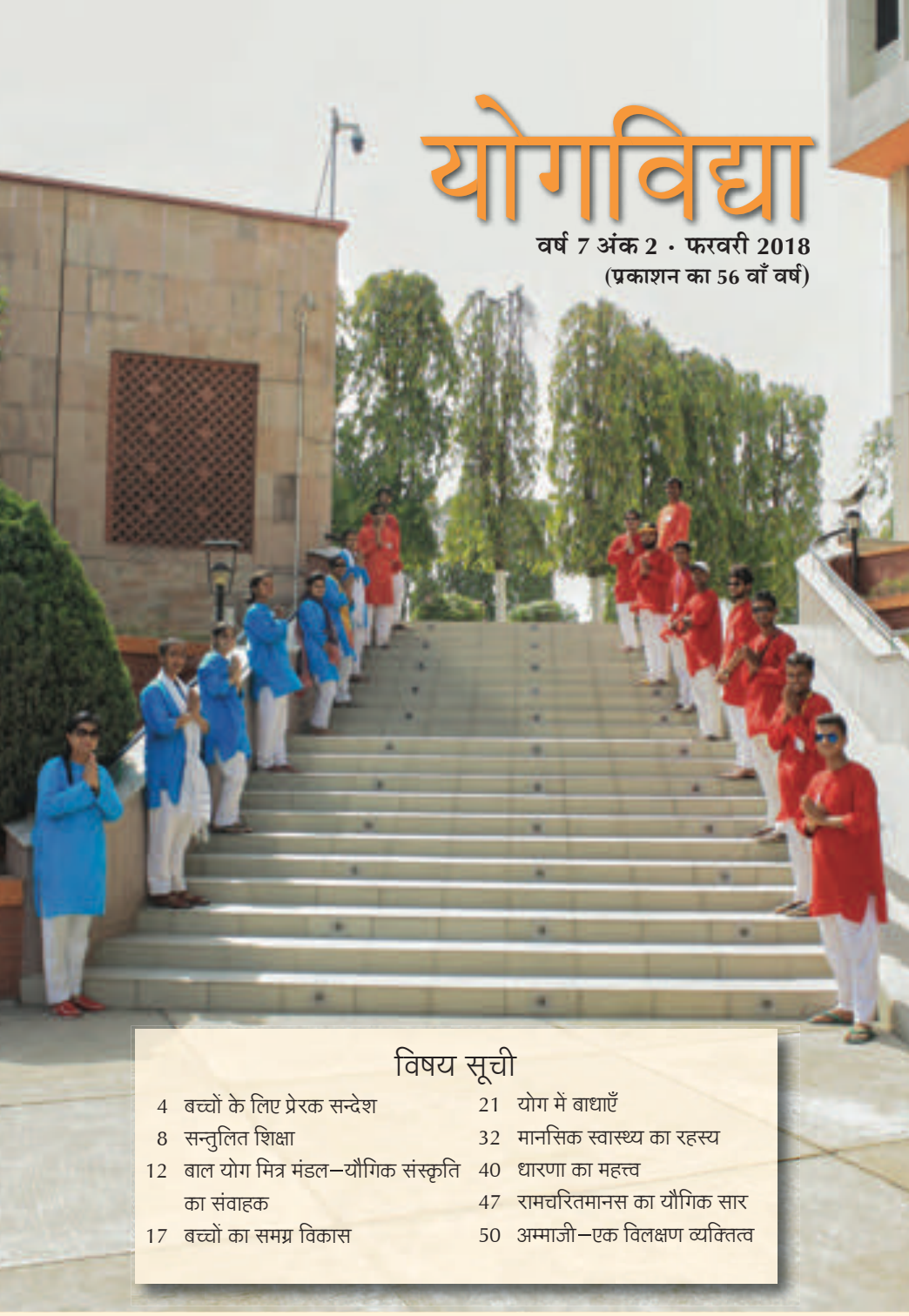

विषय सूची

4 बच्चों के लिए प्रेरक सन्देश
8 सन्तुलित शिक्षा
12 बाल योग मित्र मंडल–यौगिक संस्कृति का संवाहक
17 बच्चों का समग्र विकास
21 योग में बाधाएँ
32 मानसिक स्वास्थ्य का रहस्य
40 धारणा का महत्त्व
47 रामचरितमानस का यौगिक सार
50 अम्माजी–एक विलक्षण व्यक्तित्व

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

बच्चों के लिए प्रेरक सन्देश

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बच्चों! क्या तुम जानते हो नीतिशास्त्र क्या है? नीतिशास्त्र सदाचार का शास्त्र है। सदाचार यह बतलाता है कि मनुष्य को परस्पर दूसरे प्राणियों के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए। इस शास्त्र में वे क्रमबद्ध सिद्धान्त दिये गये हैं जिन पर मनुष्य को चलना चाहिए। नीतिशास्त्र न हो तो मनुष्य इस संसार में अथवा अध्यात्म-मार्ग में कुछ भी प्रगति नहीं कर सकता। जो व्यक्ति शुद्ध नैतिक जीवन बिताता है, वही शाश्वत शान्ति पाता है। नीतिशास्त्र के अनुसार व्यवहार करने से तुम अपने पड़ोसियों, परिवार के लोगों, मित्रों और अन्य सभी लोगों के संग मेल-मिलाप के साथ रह सकोगे।

ऐसा काम कभी नहीं करना चाहिए जिससे दूसरों का भला न होता हो या जिसके लिए बाद में पछताना या लज्जित होना पड़े, बल्कि ऐसे काम करने चाहिए जिनके लिए आगे चलकर सब लोग तुम्हारी प्रशंसा करें। अपना तथा दूसरों का भला करने वाले प्रशंसनीय काम ही करने चाहिए। यही सदाचार कहलाता है। सत्य बोलना, अहिंसा का आचरण करना, दूसरों को मन, वाणी अथवा कर्म से कष्ट न पहुँचाना, किसी के प्रति क्रोध न प्रकट करना, दूसरों की निन्दा अथवा बुराई न करना और सबमें ईश्वर का दर्शन करना सदाचार है।

मनुष्य में जितने सद्‌गुण होते हैं, उन सबको मिलाकर चरित्र कहते हैं। चरित्र से ही मनुष्य शक्तिशाली और तेजस्वी होता है। लोग कहते हैं, 'ज्ञान ही शक्ति है',

पर मैं पूरे जोर के साथ कहता हूँ कि 'चरित्र ही शक्ति है।' चरित्र के बिना ज्ञानार्जन सम्भव नहीं है। चरित्रहीन व्यक्ति इस संसार में मृतप्राय है। समाज उसे तिरस्कार और उपेक्षा की दृष्टि से देखता है। यदि तुम अपने जीवन में सफल होना चाहते हो, दूसरों को प्रभावित करना चाहते हो, सांसारिक और आध्यात्मिक मार्ग में प्रगति करना चाहते हो तो तुम्हारा चरित्र निष्कलंक होना चाहिए। शंकराचार्य, बुद्ध, ईसा और प्राचीन ऋषियों को आज भी याद किया जाता है, क्योंकि उनका चरित्र दिव्य और अद्भुत था। वे लोग अपने चरित्रबल से ही दूसरों को प्रभावित और उनके हृदय को परिवर्तित कर सके। चरित्र जीवन का स्तम्भ है। मनुष्य के नित्य जीवन का व्यवहार ही उसके चरित्र को प्रकट करता है।

चरित्र महान् आत्मशक्ति है। वह उस सुन्दर फूल के समान है जो चारों ओर अपनी सुगन्ध फैलाता है। सच्चरित्र तथा सद्गुणों से युक्त मनुष्यों का व्यक्तित्व अद्भुत होता है। कोई व्यक्ति प्रतिभाशाली कलाकार, कुशल संगीतकार, महान् कवि या योग्य वैज्ञानिक हो सकता है, लेकिन यदि उसका चरित्र शुद्ध नहीं है, तो समाज में उसको समुचित स्थान नहीं मिलेगा। लोग उसको दुत्कारेंगे। चरित्रवान् व्यक्ति को दयालु, कृपालु, सत्यनिष्ठ, क्षमाशील और सहिष्णु होना चाहिए। जो व्यक्ति जान-बूझ कर असत्य बोलता है, दूसरों की भावना को चोट पहुँचाता है, उसे दुश्चरित्र कहते हैं। हर एक को इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि उसका चरित्र शुद्ध और निष्कलंक हो।

शुद्ध और निष्कलंक चरित्र वाले व्यक्ति के लक्षण क्या हैं? चरित्रवान् व्यक्ति में अनेक गुण होने चाहिए, जिनमें मुख्य हैं नम्रता, निर्भयता, दानशीलता, मन-वाणी-कर्म से अहिंसा-पालन, दृढ़ संकल्पशक्ति, शालीनता, आत्मनिग्रह, अक्रोध, निरहंकार, शुचिता और प्राणीमात्र के प्रति करुणा।

बच्चों, एक जमाना था जब मनुष्य भी पशुओं की तरह खरीदे और बेचे जाते थे। अमीर लोग उन्हें नौकर की तरह नहीं, गुलाम की तरह रखते थे। वे यदि मालिक की इच्छा के विरुद्ध कुछ भी करते तो उनके साथ बड़ा बुरा व्यवहार किया जाता था। उनके मामूली अपराध से ही मालिक का क्रोध भड़क जाता था। उन्हें जीवन-भर गुलामी करनी पड़ती थी। अमीर लोग उन्हें खरीदते थे और उन्हें निजी सम्पत्ति मानते थे। वे यदि भाग जाते तो उन्हें खोज कर पकड़ा जाता था और कठोर दण्ड दिया जाता था। बड़ी लज्जा की बात है कि बेकसूर गुलामों के साथ ऐसा दुर्व्यवहार किया जाता था।

प्राचीन रोम में ऐसा ही एक गुलाम था, जिसका मालिक उसके साथ बहुत बुरा बर्ताव करता था। गुलाम का नाम था एंड्रोक्लीस। मामूली अपराध के लिए भी मालिक चाबुक से उसकी पिटाई करता। उसे आधा पेट भूखा रखता। इन कष्टों से गुलाम बहुत तंग आ गया और एक दिन जंगल की ओर भाग गया।

वहाँ जंगल में पौधों के झुरमुट में उसने किसी की कराह सुनी। जब वह उस ओर गया तो वहाँ एक शेर को कराहते हुए देखा। शेर अपना एक पंजा उठाकर दिखा रहा था। उस पंजे में एक मोटा काँटा चुभा था। वह गुलाम उसके पास गया और उसने वह काँटा निकाल दिया, फिर कपड़े के एक टुकड़े से पट्टी बाँध दी। शेर को आराम मिला। वह एंड्रोक्लीस के पैरों पर लोट गया। फिर पूँछ हिलाते हुए कुत्ते की तरह उसका हाथ चाटने लगा। वे दोनों मित्र बन गये और एक ही गुफा में रहने लगे।

कुछ महीनों बाद मालिक ने किसी तरह उस गुलाम को पकड़ लिया और उसे राजा के पास ले गया। राजा ने आदेश दिया कि गुलाम को भूखे शेर के सामने फेंक दिया जाए। इसके लिए एक दिन निश्चित किया गया। शेर और एंड्रोक्लीस की भिड़न्त देखने के लिए हजारों लोग इकट्ठे हुए। बेचारे गुलाम को एक पिंजरे में बन्द कर दिया गया और उसी में शेर को छोड़ दिया गया। शेर जोर से गरजा और गुलाम की ओर लपका। लेकिन गुलाम के समीप जाते ही उसने अपने पुराने दोस्त को पहचान लिया। शेर फौरन उसके पैरों पर गिर पड़ा और पूँछ हिलाते हुए उसका हाथ चाटने लगा। यह आश्चर्य देखकर राजा और प्रजा सब चकित रह गये।

राजा ने गुलाम को पास बुलाया। गुलाम ने शेर के साथ अपनी मित्रता की सारी कहानी कह सुनायी। पूरी कथा सुनकर राजा बहुत खुश हुआ और गुलाम तथा शेर, दोनों को आजाद कर दिया।

प्यारे बच्चों, एंड्रोक्लीस शेर के पास जाने का साहस कैसे कर सका? शेर पीड़ा से कराह रहा था और अपना पंजा उठाकर दिखा रहा था। एंड्रोक्लीस ने पंजे में चुभे हुए काँटे को स्पष्ट देख लिया। उसे देखकर गुलाम का हृदय पसीज गया।

इसलिए गुलाम साहसपूर्वक शेर के पास गया और उसने उसका पंजा अपने हाथ में लेकर काँटा निकाल दिया। शेर को आराम मिला और कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए उसने पूँछ हिलानी शुरू कर दी।

पशु भी बड़े भावुक होते हैं। उनके साथ जैसा व्यवहार किया जाता है, वे भी वैसा ही व्यवहार करते हैं। तभी तो हाथी, बाघ, कुत्ते आदि कई जंगली पशु भी पालतू बना लिए जाते हैं और उनको काम भी सिखाया जाता है। बच्चों, क्या तुमने अल्पाइन रेड-क्रॉस कुत्तों के बारे में सुना है? स्विट्जरलैण्ड के आल्प्स पर्वत में जो लोग बर्फ में खो जाते हैं, उनकी तलाश करने तथा उनकी रक्षा करने का प्रशिक्षण वहाँ के सेंट बर्नार्ड कुत्तों को दिया जाता है। रेड-क्रॉस कुत्ते लड़ाइयों में एम्बुलेन्स टोली की मदद भी करते हैं। प्रत्येक रेड-क्रॉस कुत्ते के गले में छोटी थैली बँधी होती है जिसमें मरहम-पट्टी करने का सामान होता है और ब्राण्डी की छोटी बोतल भी रहती है। कुत्ते को जब कोई ऐसा घायल व्यक्ति दिखायी देता है, जो स्वयं अपना थोड़ा-बहुत उपचार कर सकता हो तो कुत्ता उसके पास जाकर तब तक खड़ा रहता है जब तक वह अपने घाव पर पट्टी नहीं बाँध लेता। यदि वह व्यक्ति इतना अधिक घायल होता है कि स्वयं कुछ भी नहीं कर पाता तो कुत्ता उसके पास खड़ा होकर भौंकने लगता है। उसका भौंकना सुनकर स्ट्रेचर से ढोने वाले लोग आ जाते हैं और उस व्यक्ति को उठाकर युद्ध के मैदान से बाहर प्राथमिक उपचारगृह में ले जाते हैं। कितने आश्चर्य की बात है कि कुत्ते भी ऐसा मानवीय कार्य करते हैं!

बच्चों, दया का अपना पुरस्कार होता है। दया और सद्भाव से किया गया छोटा-सा भी काम हमारे हृदय को शुद्ध करता है और वहाँ ईश्वरीय-चेतना को अधिकाधिक जागृत करता है। इसलिए अपने भीतर दया और करुणा विकसित करो।

सन्तुलित शिक्षा

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

बच्चों में अत्यधिक ऊर्जा होती है। इसलिए उन्हें दौड़ना-कूदना चाहिए, तरह-तरह के खेलों का आनन्द उठाना चाहिए। उनके लिए केवल बैठना और पढ़ना अच्छा नहीं है। उनकी ऊर्जा को संतुलित होना चाहिए। माता-पिता में बच्चों को झिड़कते रहने की बड़ी बुरी आदत होती है। वे हमेशा कहते हैं, 'तुम पढ़ाई क्यो नहीं कर रहे? तुमने अपना होमवर्क किया?' बच्चों से कभी नहीं कहा जाता, 'तुम जाकर फुटबॉल क्यों नहीं खेलते?' या 'एक अच्छी फिल्म चल रही है, कुछ पैसे ले लो और जाकर देख आओ।'

बच्चों को नटखट होना चाहिए। यदि उनकी शैतानियों को रोका और दबाकर रखा जाता है तो बाद में उनमें बुराइयाँ आ जाती हैं और उनके माता-पिता उन्हें नियंत्रित नहीं कर पाते हैं। जब बच्चे छोटे घर में शैतानी करते हैं तो उस सीमित स्थान में माता-पिता के लिए उन्हें नियंत्रित रख पाना कठिन होता है, लेकिन आश्रम जैसे स्थान पर क्या कठिनाई हो सकती है? बच्चे आश्रम के एक छोर से दूसरे छोर तक पाँच बार दौड़ लगा सकते हैं। वे खेल सकते हैं, शैतानियाँ कर सकते हैं, अपनी सारी ऊर्जा का क्षय कर सकते हैं, और उसके बाद अच्छी तरह सो सकते हैं। इस तरह का क्रिया-कलाप शैतानी नहीं, बाल लीला है।

लोग समझते हैं कि बच्चों की चेतना का स्तर उन्हीं के समान है। लेकिन एक वयस्क और उसके छ: वर्षीय बच्चे की चेतना का स्तर बिल्कुल भिन्न होता है। जब बच्चा कहता है, 'मैं एक फिल्म देखना चाहता हूँ' तो उसके मन में जो विचार होते हैं वे तीस-बत्तीस वर्ष के पिता से बिल्कुल भिन्न होते हैं। बच्चों में निम्न प्रवृत्ति नहीं होती, उनकी सजगता का स्तर बहुत ऊँचा होता है। बच्चे ईश्वर के अत्यंत निकट होते हैं, और इसलिए पवित्र होते हैं।

विद्यालयों में खेलकूद को एक विषय के रूप में सम्मिलित किये जाने की व्यवस्था होनी चाहिए। शारीरिक रूप से अक्षम बच्चों के अतिरिक्त सभी के लिए खेलों को अनिवार्य बनाना चाहिए। बौद्धिक क्रियाकलापों के साथ-साथ खेलकूद, अभिनय तथा संगीत में प्रतियोगिताएँ होनी चाहिए। बच्चों को यह पढ़ाने की क्या आवश्यकता है कि अकबर का जन्म कब हुआ और औरंगज़ेब का जन्म कब? इस इतिहास को कौन जानना चाहता है? जब बच्चों के पास समय हो और वे पढ़ना चाहें, तब उन्हें पढ़ाया जाए, अन्यथा शिक्षा के नाम पर इस तरह के ढेर सारे तथ्यों को उनपर थोपा नहीं जाए। बच्चों पर अत्यधिक किताबी ज्ञान का बोझ लादना आवश्यक नहीं है।

बच्चे किताबी ज्ञान और डिग्रियों से महान् नहीं बनते। वे अपने मानसिक गुणों, बुद्धि और ग्रहणशीलता से महान् बनते हैं। उनका विकास इसपर निर्भर रहता है कि वे कितना ग्रहण करते हैं, कितना धारण करते हैं और उसका कितना उपयोग कर पाते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं कि पढ़ना नहीं चाहिए। योग्यता तथा डिग्री होनी चाहिए, क्योंकि आज पूरे विश्व में यही व्यवस्था है और हमें इसका सम्मान करना चाहिए। लेकिन जब बच्चों से बार-बार पूछा जाता है, 'क्या तुमने अपना होमवर्क किया?' तो वे इस बात से भयभीत रहते हैं कि कहीं उन्हें परीक्षा में कम अंक न मिलें। उन्हें यह चिंता सताती है कि यदि वे फेल हो गये तो उनके माता-पिता क्या कहेंगे, उन्हें उनकी डाँट सुननी पड़ेगी।

स्कूली बच्चों को हमेशा परीक्षा में फेल होने का भय सताता रहता है। माता-पिता को अपने बच्चों से कहना चाहिए, 'कोई बात नहीं, अगर तुम फेल हो गये तो फिर से प्रयास करना।' लेकिन माता-पिता में ऐसी बात कहने का साहस नहीं होता, इसलिए उनके बच्चे सोचते हैं, 'बाकी विद्यार्थी प्रथम श्रेणी प्राप्त करने की तैयारी कर रहे हैं। अगर मैं द्वितीय श्रेणी प्राप्त करता हूँ तो पिताजी क्या कहेंगे?' ऐसे विचार बच्चों के मन में इस तरह भर दिये जाते हैं कि उनका व्यक्तित्व ही विकृत हो जाता है। इसके बदले बच्चों से कहना चाहिए, 'यदि मन हो तो जाकर पढ़ो, नहीं तो थोड़ा खेल-कूद लो। परीक्षा के लिए बहुत चिंतित होने की आवश्यकता नहीं है।'

इतिहास में ऐसे अनेक बच्चे हुए हैं जो पढ़ाई में अच्छे नहीं थे, लेकिन वे अपने जीवन में बहुत सफल हुए। आइज़ैक न्यूटन, जिन्होंने गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त की खोज की, एक सामान्य विद्यार्थी थे, लेकिन वे अग्रगण्य वैज्ञानिक हुए और

आज हर कोई उन्हें और उनके गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त को जानता है। यदि कोई बच्चा मंद विद्यार्थी है तो इसका यह अर्थ नहीं है कि वह आजीवन मंद ही रहेगा। मैं अपने स्कूल के दिनों में गणित में बहुत कमजोर था, लेकिन आज मैं किसी कैल्क्युलेटर की सहायता के बिना भी सारे हिसाब कर लेता हूँ। अहम बात तो यह है कि आपको जीवन की समस्याओं का समाधान करने में सक्षम होना चाहिए। यदि आप ऐसा नहीं कर सकते तो प्रथम श्रेणी का विद्यार्थी होने का क्या लाभ?

यह आम धारणा है कि अगर बच्चे खेलते और मस्ती करते हैं तो वे अपनी पढ़ाई और अपने जीवन में असफल हो जायेंगे, लेकिन यह सत्य नहीं है। इसके विपरीत यदि उनके पास खेलने और मस्ती करने का समय है तो वे सफल होंगे, और यदि वे अत्यधिक पढ़ते हैं तो हो सकता है वे अपना जीवन बर्बाद कर दें। खेलने से बच्चों की मांसपेशीय एवं स्नायविक ऊर्जाएँ संतुलित होती हैं और इससे सम्पूर्ण शरीर में रक्त का समुचित संचार होता है। यदि बच्चा पूरे दिन टी.वी. देखता रहता है या कुर्सी-मेज पर बैठकर पढ़ता रहता है, तो जाम हुई नाली की तरह उसका रक्त संचार मंद पड़ जाता है। इससे उसकी पढ़ाई पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

सामान्यत: बच्चों में नयी बातों को सीखने की क्षमता इतनी अधिक होती है कि शिक्षक को किसी भी पाठ को एक बार ही पढ़ाने की आवश्यकता होनी चाहिए। आखिर बच्चे जब कोई फिल्मी गाना सुनते हैं तो एक ही बार में उन्हें याद हो जाता है न? फिर स्कूल में उन्हें शिक्षक द्वारा बार-बार पढ़ाने की आवश्यकता क्यों होती है? बच्चों को खेलने-कूदने के लिए स्वतंत्र छोड़ देना चाहिए। लेकिन आजकल स्कूलों में बच्चों के साथ जो हो रहा है, वह देखकर मुझे दु:ख होता है।

प्राय: शिक्षक और स्कूल के छोटे बच्चों की मानसिक अवस्था में बहुत अन्तर होता है। पढ़ाते समय इस अन्तर का ध्यान रखा जाना चाहिए। बच्चों को पढ़ाते समय उनके स्तर पर आ जाना चाहिए। शिक्षक को हमेशा यह नहीं दुहराते रहना चाहिए, 'ऐसा करो, वैसा मत करो।' हमेशा बच्चों के दोषों को देखते नहीं रहना चाहिए। शिक्षक न तो पुलिसवाला है न ही शिकारी। उसे बच्चे का एक प्यारा साथी होना चाहिए और जब बच्चा दस-बारह वर्ष का हो जाए तब उसे उसका शिक्षक बन जाना चाहिए। सात वर्ष की अवस्था तक आपको यह भूल जाना चाहिए कि बच्चों को कुछ पढ़ाना है। सकारात्मक संस्कारों के माध्यम से बच्चों की शिक्षा होनी चाहिए। बच्चों को सामान्य ढंग से विकसित होने देना चाहिए। उन्हें गाने, खेलने, शोर मचाने और शैतानी करने की छूट दी जानी चाहिए। इसमें कुछ भी गलत नहीं है।

स्मरण रखने वाली एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बच्चे को यह कभी नहीं कहा जाए कि क्या सही है और क्या गलत, क्या अच्छा है और क्या बुरा। यह विभेद एक अपराधी मन की जटिलता है। बच्चों के मन में ऐसे अपराध बोध की भावना नहीं डालनी चाहिए। जब वे वयस्क हो जायेंगे तो अपने आप उन्हें सही-गलत और अच्छे-बुरे की पहचान हो जायेगी। आखिर पशु-पक्षी भी यह फर्क समझते हैं। अभिभावकों और शिक्षकों को बच्चों से बहुत पढ़ने के लिए या जीवन में बड़ा बनने के लिए नहीं कहना चाहिए। उन्हें अपने स्कूल की अवधि का आनन्द उठाने देना चाहिए। उन्हें अपने शिक्षकों को स्नेही और मित्रवत् मानना चाहिए। इससे उनके हृदय में प्रेरणादायी एकता का भाव जागेगा।

–'बच्चों के लिए योग शिक्षा, भाग 2' से उद्धृत

बाल योग मित्र मंडल–यौगिक संस्कृति का संवाहक

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

बाल योग मित्र मंडल की स्थापना मुंगेर में सन् 1995 में हुई और इस आंदोलन का शुभारम्भ हुआ था सात बच्चों के साथ। 1995 से धीरे-धीरे इस योग मित्र मंडल का कार्यक्षेत्र बहुत बढ़ा है, बच्चों की संख्या भी बहुत बढ़ी है। बच्चों के अनेक ग्रुप आकर सीनियर बनकर रिटायर भी हो गए हैं। बहुत-से सीनियर बच्चे अभी भी आकर अपना योगदान देते हैं, अपना सम्बन्ध बनाये रखते हैं। यह एक बहुत अच्छी चीज है और इसके लिये हम अपना आभार व्यक्त करते हैं इनके माता-पिता एवं अभिभावकों को, जिन्होंने इन बच्चों को अनुमति दी कि वे आश्रम में अपना समय व्यतीत कर सकें। हमलोग यहाँ आश्रम में इन बच्चों को जो संस्कार देने का प्रयास करते हैं, वे केवल आध्यात्मिक नहीं हैं। आध्यात्मिक संस्कार तो आधार है ही, लेकिन इसके साथ-ही-साथ कर्मकौशल का पाठ भी इनको पढ़ाया जाता है ताकि ये लोग अपने जीवन में जो भी कार्य करें, उसमें सफल हों और उसके लाभ से ये वंचित न रहें।

स्वावलम्बन, संस्कार और राष्ट्र-संस्कृति-प्रेम–ये तीन लक्ष्य हैं इन बच्चों के लिये, और हमारे लिये यह बहुत गौरव की बात है कि हमारे बाल योग मित्र मंडल के बच्चों ने इस संगठन के इन उद्देश्यों को अभी भी जीवन्त रखा है। बाल योग मित्र मंडल में हमारा पहला प्रयास होता है कि इनको अपने पैरों पर खड़े होने की

क्षमता प्रदान करें। इन बच्चों का एक नारा है कि 'जो काम बड़े लोग नहीं कर पाते हैं वे हम छोटे बच्चे करके दिखलाते हैं', और ऐसा होता भी है। आखिर आश्रम में इतने सारे कार्यक्रम संचालित होते हैं। कार्यक्रमों के संचालन की सारी व्यवस्था, सारा भार हमारे मुंगेर के बाल योग मित्र मंडल और युवा योग मित्र मंडल के सदस्यों पर रहता है और ये दोनों बहुत ही निष्ठा और जिम्मेदारी से अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करते हैं। हम तो कहेंगे कि एक प्रकार से इनको इसी उम्र से एम.बी.ए. की ट्रेनिंग मिल रही है, क्योंकि आश्रम में किसी कार्यक्रम को संचालित करना सरल काम नहीं है। बहुत परिश्रम करना पड़ता है। जो लोग करते हैं, वे जानते हैं। आप लोग तो केवल आकर बैठते हो, मजा लेते हो और हरि: ॐ कहकर चले जाते हो, लेकिन यहाँ पर ये लोग बहुत दिनों से तैयारी करते हैं और अपने आपको पक्का बनाते हैं ताकि आपके सामने वे एक मिसाल के रूप में स्वयं को प्रस्तुत कर सकें।

दूसरा लक्ष्य है संस्कार। संस्कार ऐसी चीज है जिससे हम अपने जीवन का निर्माण करते हैं। जिस प्रकार पेड़ के लिये खाद और जल आवश्यक है, उनके बिना वह कमजोर हो जाता है, जल्दी गिर जाता है, उसी प्रकार मनुष्य जीवन के लिए जो खाद और जल है, वह है संस्कार। संस्कारहीन व्यक्ति जीवन में कभी सफल नहीं होता है। आपका समाज, आपका इतिहास इस बात का साक्षी है। आप खुद देखते हो कि आपके समाज में जिन लोगों के यहाँ संस्कार नहीं हैं, उनकी क्या स्थिति होती है। न कोई तरक्की होती है, न कोई उपलब्धि। लेकिन जो संस्कारी है, वह अपना रास्ता खुद बनाता है, क्योंकि वही तो संस्कार की शिक्षा होती है। जैसे पानी पहाड़ से नीचे की ओर आते समय अपना रास्ता खुद बनाते हुये आता है, वैसा ही कार्य मनुष्य के जीवन में भी होता है। संस्कार जब मनुष्य के जीवन में रहता है तो मनुष्य अपने जीवन में अपना रास्ता स्वयं बनाता जाता है। उसको किसी पर आश्रित या निर्भर होने की आवश्कयता नहीं होती।

संस्कार का तात्पर्य क्या होता है? अपने मन को, अपने आचरण को, अपने कर्मों को अच्छा बनाना, इसी को संस्कार कहते हैं, और उसका तरीका यहाँ पर ये लोग खेल-खेल में सीखते हैं, जानते हैं, समझते हैं। मैं तो उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा हूँ जब हमारे आश्रम के सभी बड़े लोग यहाँ से चले जाएँ क्योंकि उनमें संस्कार नहीं हैं और ये सब छोटे बच्चे आकर हमारे आश्रम को संभालें! अगर आप बड़े लोगों को भी इसमें शामिल होना है तो प्रयास कीजिये कि आप भी इनकी तरह संस्कारी, निष्ठावान्, कर्मठ और परिश्रमी बनें, इनकी तरह हमेशा मुस्कुराते रहें, तब जाकर आप बच्चों के साथ इस योग यात्रा में शामिल हो पायेंगे।

बड़ों को जो हमलोग सिखलाते हैं और बच्चों को जो सिखलाते हैं, उसमें जमीन-आसमान का अन्तर है। बड़ों को उनके पीठ दर्द के लिये, जोड़ों के दर्द के लिये योग कराना पड़ता है। दम फूलता है तो उसके लिये योग कराना पड़ता है।

सिरदर्द होता है, सिर भारी होता है, सर्दी-जुकाम हो जाता है, उसके लिये योग कराना पड़ता है। जबकि बच्चों को योग सिखाने का जो तरीका है, वह एकदम अलग है, क्योंकि इनको न पेट दर्द है, न पीठ दर्द है, न घुटना दर्द है, बल्कि ये लोग तो सभी का पीठ, पेट और घुटना दर्द ठीक कर सकते हैं। चाहे योग से हो, या कराटे से!

बच्चों को यहाँ पर हमलोग हर प्रकार की शिक्षा देने का प्रयास करते हैं, इन्हें मंत्रपाठ, भजन, कीर्तन, स्तोत्र, संगीत, कला आदि विषयों में निपुण बनाने का प्रयास करते हैं। लड़कियों को विशेषकर कराटे का प्रशिक्षण देते हैं ताकि वे उन लोगों को मुँहतोड़ जवाब दे सकें जो उन्हें परेशान करते हैं। इसके साथ और भी कई चीजें हैं। हमारे परमगुरु, स्वामी शिवानन्द जी कहते थे कि बच्चे मिट्टी की भाँति होते हैं। उन्हें तुम किसी भी रूप में बदल सकते हो, कोई भी आकार दे सकते हो। एक बार जब संसार की अग्नि में वह स्वरूप पक जाता है तो हमारा व्यक्तित्व बन जाता है, लेकिन जब तक वह स्वरूप पकता नहीं है, हम उसे एक नया रूप दे सकते हैं। नया रूप देने का मतलब उसका जो प्राकृतिक स्वभाव है, उसे प्रकट करना।

एक बार मुल्ला नसरूद्दीन दूरबीन लगाकर एक पेड़ को देख रहे थे। वहाँ पर उनको एक चिड़िया दिखलाई दी। उन्होंने बगल में खड़े दूसरे व्यक्ति को दूरबीन पकड़ाकर कहा, 'देखो, उस पेड़ पर एक चिड़िया दिखलाई दे रही है।' आदमी ने दूरबीन लगाकर देखा और कहा, 'हाँ, यह तो वास्तव में बहुत रंग-बिरंगी, सुन्दर और अद्भुत चिड़िया है।' मुल्ला ने कहा, 'अरे, तुम तो एक जंगली चिड़िया को देखकर खूबसूरत कह रहे हो। अब मेरा कमाल देखो!'

अगले दिन वे गये और उस चिड़िया को पकड़कर ले आये। उसके चोंच पर लिपस्टिक जैसा एकदम लाल पॉलिश कर दिया, और उसके पंख वगैरह पर नये-नये रंग लगाकर उसे बहुत ही रंग-बिरंगा बना दिया। कहा कि अब यह चिड़िया सुन्दर हुई। लेकिन अब जो भी उस चिड़िया को देखता, कहता, 'बाप रे बाप! क्या हुआ? किस दुनिया की चिड़िया है?' क्योंकि वह एकदम विचित्र दिखलाई देती थी। पूरा रंगा हुआ, पोता हुआ हुलिया था उसका।

समाज में भी हमलोग यही करते हैं न? बच्चों की जो प्राकृतिक प्रतिभा है, उसे जागृत नहीं होने देते। हम अपने बच्चों को अपने रंग में रंगना चाहते हैं, 'बेटा तुम बड़ा होकर आई.ए.एस. बनना, बेटा तुम बड़ा होकर खूब नाम-यश कमाना, बेटा तुम बड़ा होकर इन्जिनियर बनना, बेटा तुम बड़ा होकर यह करना, वह करना।' हम तो बच्चों की अपनी महत्त्वाकांक्षा के रंग से लिपाई कर रहे हैं। लेकिन उनकी जो प्राकृतिक प्रतिभा है, उसको तो कोई बढ़ाने का प्रयास नहीं कर रहा है।

यहाँ पर यही काम होता है। भगवान ने हमें जो प्राकृतिक प्रतिभा दी है, उसको हम बढ़ायें। बाल योग मित्र मंडल के प्रथम बालक के रूप में मेरा भी यही अनुभव रहा है। आखिर गुरुजी ने मुझे कराया क्या? सुला दिया योगनिद्रा में। योगनिद्रा में उन्होंने

क्या कहा, मुझे तो मालूम भी नहीं क्योंकि मैं तो सोते रहता था! लोग कहते हैं, 'आपको ट्रेनिंग मिली है योगनिद्रा में, आपने योगनिद्रा में गीता, रामायण, वेद, उपनिषद्, भाषा, विज्ञान, सब पढ़ा है।' लेकिन मुझसे पूछा जाए तो मैं तो केवल सोया हुआ था, बाकी काम जो गुरुजी ने किया, जिस तरीके से किया, वे जानें। हाँ, इसके अलावा हम जो भी काम करते थे, उसमें वे एक दिशा दे देते थे कि बेटा, यह चीज जो है, वह संन्यासी को नहीं करना चाहिये। पैसे का फिज़ूल खर्चा नहीं करना। कुछ खाना है तो खाओ, लेकिन लोभ के कारण नहीं, आवश्यकता के कारण। इन्हीं सब चीजों से हमें शिक्षा मिली है। शास्त्र में तो कहीं नहीं लिखा है कि पैसे का उपयोग मूँगफली खाने के लिये मत करो, वह तो गुरुजी ने सिखलाया। गुरुजी के जो वाक्य थे, वे मेरे दिल और दिमाग में बस गए हैं। आज भी वही शब्द, जो मैंने बचपन में सुने थे, मुझे प्रेरणा देते हैं, क्योंकि वह उनकी शिक्षा थी। बाकी आदेश था। शिक्षा और आदेश, दोनों में अन्तर होता है। आदेश को तो मानना पड़ता है, चाहे तुम स्वीकार करो या न करो। लेकिन शिक्षा तुम्हारे साथ जीवन-पर्यन्त है और वही शिक्षा संस्कार के रूप में जीवन में प्रकट होती है जिससे जीवन का निर्माण होता है।

तीसरा लक्ष्य है राष्ट्र-संस्कृति-प्रेम। शायद मुंगेर ही एक ऐसा नगर है जहाँ के लोग देश की संस्कृति से प्रेम करते हैं, क्योंकि कलकत्ता, दिल्ली या मुम्बई जाओ तो सब अमेरिका से प्रेम करते हैं। गलत बोल रहा हूँ क्या? हर व्यक्ति का स्वप्न रहता है कि मैं विदेश जाऊँ, खूब पैसा, ऐश्वर्य, नाम, यश कमाऊँ। हर कोई अमेरिकन अंदाज में चलने, बोलने और खाने की आदत डाल लेता है। बहुत बार मैं मुम्बई वगैरह जाता हूँ तो मुझे नहीं लगता कि मैं अपने देश में हूँ। वहाँ के लोग भारत से अपना सम्बन्ध, संस्कार का सम्बन्ध खो चुके हैं और पैसे के संस्कार को ग्रहण कर रहे हैं।

आदमी की वृत्ति बड़ी विचित्र होती है। कल सरस्वती पूजा थी। बच्चों को तो कहा जा रहा था कि तुम सरस्वती जी की पूजा करो, क्योंकि उनसे तुमको विद्या की प्राप्ति होगी, लेकिन बड़े लोग खुद सरस्वती की नहीं, लक्ष्मी की पूजा करते हैं। सोचते हैं कि सरस्वती तो बच्चों के लिये है। हम तो बड़े हो गये, हम पढ़ चुके हैं, अब हमें तो लक्ष्मी जी की पूजा करनी है, पैसे के लिये। बड़े गर्व से कहते हैं कि विद्या बच्चों का

क्षेत्र है और धन हमारा। क्या इसी दृष्टिकोण के साथ हमारे मनीषियों ने इन पर्वों के बारे में चिंतन किया था? नहीं, बल्कि हमारे मनीषियों ने यह चिंतन किया था कि पर्व आने पर मनुष्य अपने मूल तक पहुँचने का प्रयास एक बार अवश्य करेगा। दीवाली आती है, रात को आप लोग लक्ष्मी-पूजा करते हो कि नहीं? लेकिन किसी शास्त्र में नहीं लिखा है कि रात को लक्ष्मी-पूजा करनी है। आखिर किस वेद, उपनिषद् या पुराण में लिखा है? कहीं नहीं लिखा है, लेकिन अब लोग करते हैं क्योंकि उनका स्वार्थ है कि आज के दिन अगर हम पूजा करेंगे तो हमारे घर में सम्पत्ति आयेगी।

कहने का तात्पर्य यह कि संस्कृति का प्रयोजन मनुष्यत्व को बढ़ाने के लिये है। *साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीनः*—जिसके जीवन में न साहित्य है, न संगीत है, न कला है, उस व्यक्ति का स्वरूप वैसा ही है, जैसे एक पशु पूंछ के बिना दिखलाई देता है। साहित्य का अभिप्राय ज्ञान, बुद्धि और समझ से है, संगीत का मतलब संवेदनशीलता और भाव है, तथा कला का मतलब अभिव्यक्ति है, जो हमेशा सकारात्मक हो। ये तीन मनुष्य जीवन के आधार होते हैं और इन्हीं से संस्कृति का निर्माण होता है। यही हमारे राष्ट्र की संस्कृति भी है।

स्वावलम्बन, संस्कार और राष्ट्र-संस्कृति-प्रेम—यहाँ पर इन तीन चीजों से इन बच्चों का परिचय होता है जिससे इनके जीवन को एक आधार मिलता है, अपनी प्रतिभा के उत्थान और सदुपयोग का। बड़े होकर ये लोग अपना जीवन अच्छे से व्यतीत कर सकते हैं। इसी उद्देश्य के साथ बाल योग मित्र मंडल की स्थापना की गई थी और यह कार्यक्रम सफल रहा है। 1995 से अब तक बीस साल हो चुके हैं। आज भले ही कोई इसे समझे या न समझे, लेकिन बाल योग मित्र मंडल विश्व को बिहार और मुंगेर की एक अनुपम देन है। भविष्य इस बात का साक्षी होगा।

—14 फरवरी 2016, बाल योग दिवस, गंगा दर्शन

बच्चों का समग्र विकास

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

भारतीय वैदिक परम्परा में बच्चों को सात साल की अवस्था से ही योग से परिचित कराया जाता है। इस अवस्था तक बच्चा अपने प्रथम गुरु, माँ के पास रहता है। बच्चे के भावनात्मक विकास में यह अवस्था बहुत महत्त्वपूर्ण होती है।

तत्पश्चात् बच्चों को सूर्य नमस्कार, नाड़ी-शोधन और गायत्री मंत्र—इन तीन यौगिक अभ्यासों से परिचित कराया जाता है। सात साल की अवस्था में बच्चों में कुछ महत्त्वपूर्ण शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक घटनाएँ घटने के कारण ये तीन अभ्यास उस समय अहम भूमिका निभाते हैं। उस समय पीनियल ग्रन्थि का क्षय होना आरम्भ हो जाता है। पीनियल ग्रन्थि के विघटन की प्रक्रिया अस्सी-नब्बे साल की अवस्था तक जारी रहती है। ये तीन अभ्यास उस क्षय की गति को थामते हुए बच्चों के शारीरिक तथा मानसिक विकास का मार्ग प्रशस्त करते हैं। ये उनकी मानसिक स्पष्टता, एकाग्रता, आत्म-विश्वास और सही निर्णय लेने की क्षमता के विकास हेतु बहुत उपयोगी सिद्ध होते हैं।

आजकल बहुत-सी माताएँ अपने बच्चों की उद्विग्नता और विक्षिप्तता के बारे में शिकायत करती हैं। बच्चों में एकाग्रता का अभाव और अध्ययन के प्रति अरुचि इसलिए है कि वे उन विधियों का अभ्यास नहीं करते जो उनकी सहायता कर सकती हैं। योग मात्र एक आध्यात्मिक साधना या बच्चों को भगवान के समीप लाने वाली प्रणाली नहीं है। यह उनके जीवन को सफल और सुसंस्कृत बनाने की कारगर विधि है।

गायत्री मंत्र किसी देवी या देवता का नाम नहीं, बल्कि एक ध्वनि-तरंग है जो शरीर और मस्तिष्क पर सकारात्मक प्रभाव डालती है। संगीत सुनते ही आप तुरन्त रूपान्तरित हो जाते हैं। यदि वह संगीत आपको पसंद है तो उसमें तन्मय होकर आप आपने वातावरण की सुध-बुध भी खो सकते हैं, पर यदि वह संगीत आपको

नापसंद होने के साथ-साथ जोर से बज रहा हो, तो उससे आपको सिरदर्द भी हो सकता है। ध्वनि इतनी शक्तिशाली चीज है कि काँच को चकनाचूर करने से लेकर भूस्खलन तक करा सकती है।

गायत्री मंत्र का पाठ सृजनशीलता, अन्तर्प्रज्ञा और मानसिक स्पष्टता की वृद्धि हेतु किया जाता है। सूर्य नमस्कार और नाड़ी-शोधन प्राणायाम शारीरिक एवं प्राणिक स्तर पर सामंजस्य और संतुलन प्रदान करते हैं। अगर ये तीन अभ्यास बच्चों को सात साल की अवस्था में सिखाये जाएँ, तो उनकी बहुत मदद कर सकते हैं।

दुर्भाग्यवश आजकल लोगों के पास अपने बच्चों को ऐसे अहम अभ्यास सिखलाने के लिए न तो समय है, न ही रुझान। पूछने पर वे अनेकों बहाने बतला सकते हैं। लेकिन इतना याद रखिये कि आप अपने बच्चे को किसी महत्त्वपूर्ण चीज से वंचित रख रहे हैं। अभिभावकों को इस ओर ध्यान देना होगा। बच्चों के विकास के लिए इससे अधिक और कुछ नहीं चाहिए।

माता-पिता को बच्चों का पालन-पोषण करने के साथ-साथ समाज में उनकी सहभागिता के लिए भी प्रयास करना होता है। बाकी चीजों की जिम्मेदारी खुद बच्चों पर है, क्योंकि आपने उन्हें केवल जन्म और शरीर दिया है, आत्मा नहीं। आत्मा तो कहीं और से स्वयं को अभिव्यक्त करने आई है। आप कितना भी प्रयास कीजिये, लेकिन इस अभिव्यक्ति को रोक नहीं पायेंगे। अगर आप अपने बच्चे में एक विशेष गुण देखना चाहते हैं तो इसका ख्याल आपको गर्भाधान के समय से ही रखना होगा। अगर आप अपने बच्चे को नटखट और शरारती की बजाय शांत और चुप देखना चाहते हैं तो इसके लिए आपको पहले से ही सोचना चाहिए था। वैसे बच्चों को नटखट ही होना चाहिए। जो बच्चे नटखट नहीं होते, वे मूर्ख होते हैं। बुद्धिमान् बच्चे ही शरारतें किया करते हैं। बच्चे अपने माता-पिता के धैर्य और आत्म-संयम की परीक्षा लेने और प्रशिक्षण देने के लिए ही आये हैं। माता-पिता का कर्तव्य निभाना अपने में एक बहुत बड़ी साधना है।

आपको सदा बच्चों को ढेर सारा प्रेम और स्नेह देना चाहिए। बच्चे चतुर होते हैं, उन्हें मालूम रहता है कि अपने माता-पिता को कैसे सम्भालना है, क्योंकि वे चुपचाप आपको हर समय देखते रहते

हैं। उन्हें पता है कि कौन-सी चीज आपको खुश करती है और कौन-सी नाखुश। वे यह भी जानते हैं कि कब आप सच्चाई और ईमानदारी से पेश आ रहे हैं और कब अभिनय कर रहे हैं। आप बच्चों के साथ प्रेम का अभिनय नहीं कर सकते, उन्हें तुरन्त मालूम पड़ जाता है। यदि माता-पिता को कोई पटरी पर ला सकता है, तो केवल उनके बच्चे।

माता-पिता हमेशा अपने को ठीक और बच्चों को गलत समझते हैं। लेकिन याद कीजिये, आप लोग भी एक समय बच्चे थे और अपने माता-पिता को तंग किया करते थे। इसलिए जब भी बच्चे अपनी सीमाओं का उल्लंघन करते हैं, तब शांत बैठकर जरा सोचिए कि आप खुद बचपन में क्या किया करते थे। ऐसा सोचने पर आप निस्सन्देह उन्हें क्षमा कर देंगे।

बच्चों में ऊर्जा बहुत रहती है, जिसका खर्च वे शरारतों में किया करते हैं। लेकिन यदि वे इस ऊर्जा को नियंत्रित कर मस्तिष्क के उच्च केन्द्रों की ओर दिशान्तरित कर सकें, तो निश्चित रूप से सृजनशील और प्रतिभावान् बन सकते हैं। बड़े होकर वे कुशल शिक्षक, व्यापारी, इन्जिनियर और अच्छे अभिभावक बन सकते हैं। अच्छा मनुष्य बनना ही महत्त्वपूर्ण चीज है, उसमें भी एक अच्छी माता या पिता बनना अपने आप में एक बड़ी उपलब्धि है।

बच्चे को उचित दिशा-निर्देशन, लक्ष्य, प्रशिक्षण और अनुशासन देना माता-पिता का प्राथमिक कर्तव्य है। बच्चे माता-पिता की ममता-आसक्ति के पात्र या उनके अधूरे सपनों को पूरा करने वाली कठपुतलियाँ मात्र नहीं हैं। आपको एक शिल्पकार की तरह उनके व्यक्तित्व को तराशना होगा और यह योग के अभ्यासों से ही सम्भव है।

आत्मा एक सार्वभौमिक तत्त्व है जो लिंग, धर्म, जाति और राष्ट्रीयता की सीमाओं से परे है। इसी अलौकिक तत्त्व के साथ आप इस संसार में आये हैं, और इससे परिचित होना आपके लिए जरूरी है, क्योंकि यही आपका स्रोत और बीज है। जन्म के समय बच्चे स्वाभाविक रूप से आध्यात्मिक और भगवान के समीप होते हैं। उनमें दिव्यता सहज रूप से परिलक्षित होती है। लेकिन बड़े होने पर हम संसार से सम्बन्ध जोड़ते हैं और यह सांसारिक व्यापार हमें अपनी अन्तरात्मा से दूर ले जाता है। अपने वातावरण और प्रशिक्षण के अनुसार हमलोग चालाक, धूर्त्त और टेढ़े होते जाते हैं और आत्म-तत्त्व से अधिक दूर होते जाते हैं।

यह जरूरी है कि माता-पिता अपने बच्चों को आध्यात्मिक वातावरण दें ताकि संसार में रहते हुए और जीवन की माँगों को पूरा करते हुए भी वे आध्यात्मिक सजगता का विकास कर सकें। बच्चों के लिए योग एक अच्छा अवसर है। बचपन से ही उन्हें मंत्र, आसन और प्राणायाम से परिचित कराना चाहिए। इससे उन्हें जीवन में एक मजबूत आधार मिलेगा। स्वस्थ शरीर, सकारात्मक मन और अच्छे

चरित्र से युक्त होकर वे किसी भी कठिनाई का सामना करने में सक्षम होंगे। आपको अपने बच्चों को बाल्यावस्था से ही प्रशिक्षित करना होगा, क्योंकि उस समय वे एक साफ कैन्वास की तरह होते हैं, जिस पर आप किसी भी चित्र को उतार सकते हैं।

कुछ बच्चे ऐसे प्रशिक्षण को नापसंद और इसका विरोध भी कर सकते हैं। फिर भी आपका यह कर्तव्य है कि आप उनके सामने विभिन्न प्रकार के अवसर प्रस्तुत करें और उन्हें अपनी नियति का चुनाव खुद करने दें। इस चुनाव में आपकी कोई भूमिका नहीं है। बच्चों को मंदिर या गिरजाघर जाने, भगवान से प्रार्थना करने अथवा योगाभ्यास करने के लिए मजबूर नहीं करना। उन्हें सिर्फ अवसर प्रदान करना और वे अपनी नियति के मुताबिक सही निर्णय स्वयं लेंगे। आखिर वे अपनी नियति साथ लेकर आए हैं। उनके अपने कर्म हैं, संस्कार हैं और उन्हीं के मुताबिक उनकी इच्छाएँ और कर्म होंगे। आप इसे बदल नहीं सकते।

बच्चे को खुद सोचने की स्वतंत्रता देनी चाहिए। उन्हें सक्षम, सबल और स्वावलम्बी बनाकर, सब प्रकार के अवसर प्रदान करने चाहिए। अगर वे डिस्को या नाइटक्लब में जाना चाहते हैं तो जाने दो। मुझे मनुष्य की क्षमता और शक्ति पर पूरा विश्वास है। निश्चित रूप से व्यक्ति कभी-न-कभी जीवन की यथार्थता के प्रति सजग हो ही जाएगा।

योग में बाधाएँ

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

योग के मार्ग में कुछ बाधाएँ हैं जिन्हें हर हाल में आपको अपने यौगिक जीवन के प्रारम्भ में ही दूर कर लेना चाहिए। यदि आपने इन बाधाओं से स्वयं की सही समय पर रक्षा नहीं की तो आपकी आशाएँ और महत्त्वाकांक्षाएँ छिन्न-भिन्न हो सकती हैं और अन्ततः पतन निश्चित है। कामुकता, लोभ, क्रोध, घृणा, ईर्ष्या, भय, आलस्य, अवसाद, पूर्वाग्रह, असहिष्णुता, बुरी संगत, अहंकार, नाम और यश की चाह, कौतूहल, हवाई किले बनाना और ढोंग प्रमुख बाधाएँ हैं। आपको सदा आत्म-निरीक्षण करना चाहिए तथा अपने मन पर कड़ी नजर रखनी चाहिए। आपको उचित उपायों के द्वारा इन अवरोधों को जड़ समेत मिटाना चाहिए।

योग के साधक के पास ज्यादा धन नहीं होना चाहिए क्योंकि ये उसे सांसारिक प्रलोभनों की तरफ खींचेगा। वह शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए थोड़ा पैसा रख सकता है। आत्मनिर्भरता एक साधक के लिए बहुत जरूरी है, तभी वह निश्चिन्त होकर अपनी साधना जारी रख सकता है।

अगर आप छोटी-छोटी बातों का भी जल्दी बुरा मान जाते हैं तो जान लीजिए कि योग और ध्यान में आप प्रगति नहीं कर सकते। आपको स्नेही और मिलनसार स्वभाव विकसित करना चाहिए, परिस्थिति के अनुकूल स्वयं को ढालने की क्षमता उत्पन्न करनी चाहिए। कुछ साधक अपनी गलतियाँ या अवगुण बताए जाने पर एकदम बुरा मान जाते हैं। दोष दिखाने वाले व्यक्ति से वे क्रुद्ध होकर झगड़ने लगते हैं। उन्हें लगता है कि वह व्यक्ति नफरत या जलन के कारण मनगढंत दोष लगा रहा है। यह गलत बात है। दूसरे लोग आपके दोषों को आसानी से पकड़ सकते हैं। अगर आप आत्म-निरीक्षण नहीं करते और मन सदा बाहर की ओर दौड़ता है तो फिर आप अपनी कमियों का कैसे पता लगा सकते हैं? आपका मिथ्याभिमान आपकी विवेक शक्ति को धुंधला देता है। इसलिए अगर आप योग और अध्यात्म में आगे बढ़ना चाहते हैं तो दूसरे जब आपके दोष बताएँ, तो उन्हें स्वीकार कर लेना चाहिए। आपकी कोशिश होनी चाहिए कि आप उन गलतियों को दूर करें और गलती दिखाने वाले व्यक्ति के सदा आभारी रहें।

हठधर्मी स्वभाव से छुटकारा पाना बड़ा मुश्किल होता है। ऐसा स्वभाव केवल अज्ञानता की देन है। प्रत्येक मनुष्य का व्यक्तित्व बहुत पहले से ढला होता है। यह व्यक्तित्व समय के साथ और भी कठोर व अनम्य होता जाता है। इस व्यक्तित्व को लचीला बनाना बहुत कठिन है। आप दूसरों को दबाकर रखना चाहते हैं, दूसरों की राय सुनना नहीं चाहते, चाहे वह कितनी ही तर्कसंगत, उचित और समर्थनीय

क्यों न हो। आपकी सोच इतनी संकीर्ण होती है कि आपको लगता है जो भी मैं कहता हूँ या करता हूँ वही सही है। दूसरों के विचार और कार्य सब गलत हैं। आप कभी अपनी गलती नहीं मानते। अपने बेतुके विचारों को भी आप उल्टे-सीधे तर्क देकर सही साबित करना चाहते हैं। अगर बहसबाजी से काम नहीं बनता तो आप हाथापाई पर भी उतर आते हैं। अगर लोग आपको सम्मान नहीं देते तो आप तुरन्त गुस्से से भड़क उठते हैं। जो भी आपकी तारीफ या चापलूसी करे, उससे आप एकदम खुश हो जाते हैं। खुद को सही साबित करने के लिए आप दुनियाभर के झूठ बोलने से भी बाज नहीं आते। खुद को सही साबित करना और हठधर्मी राजसिक स्वभाव दोनो साथ-साथ चलते हैं। इनके रहते आप योग मार्ग में आगे नहीं बढ़ सकते। आपको अपनी मानसिकता बदलनी चाहिए। आपको दूसरों के नजरिये से चीजों को देखने की आदत डालनी चाहिए तथा सत्य और सदाचार का एक नया दृष्टिकोण अपनाना चाहिये। तभी आप योग और अध्यात्म में आगे बढ़

सकते हैं। आदर-सत्कार को विष तथा आलोचना-तिरस्कार को अमृत की तरह ग्रहण करना चाहिए।

दूसरों के तौर-तरीकों और आदतों के मुताबिक खुद को ढालना आपको मुश्किल लगेगा। आपका मन पहले से ही जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदि से जुड़े पूर्वाग्रहों तथा राग-द्वेष से भरा हुआ है। आप में बहुत असहिष्णुता है। दूसरों की कमियाँ निकालना आपके स्वभाव का अंग है और आप किसी की गलती पकड़ने का कोई मौका नहीं छोड़ते। आप किसी में कुछ अच्छा देख ही नहीं सकते और न ही किसी के अच्छे काम की सराहना कर सकते हैं। आप अपनी काबिलियत का ही डंका बजाते रहते हैं। यही वजह है कि आपका सभी से झगड़ा हो जाता है और आप लम्बे समय तक किसी से मधुर सम्बन्ध बनाकर नहीं रख पाते। आपको प्रेम, सहनशीलता और अन्य सद्गुणों को अपनाकर इन दोषों को दूर करना चाहिए।

दिखावा, चालाकी, कुटिलता, दम्भ, संकीर्ण मानसिकता, लड़ाई-झगड़ा, बड़बोलापन, अभिमान, दूसरों की निन्दा करना, उन्हें नीचा दिखाना—इस तरह के नकारात्मक संस्कार अभी भी आप के मन में छिपे होंगे। जब तक आप इन सभी अवांछित दोषों को पूरी तरह दूर नहीं कर देते, आप सफल नहीं हो सकते।

जो लोग बेवजह की बहसबाजी या वाद-विवाद में लगे रहते हैं वे अपने सूक्ष्म शरीर को बहुत नुकसान पहुँचाते हैं। वे अपनी बहुत-सी ऊर्जा ऐसे ही नष्ट कर देते हैं। इस तरह की बहस करने वाले लोग योग में लेश मात्र भी प्रगति नहीं कर सकते। साधकों को ऐसे वाद-विवाद बिल्कुल छोड़ देने चाहिए। आत्म-निरीक्षण के जरिये बहस की इच्छा को भी खत्म कर देना चाहिए।

आपने पहुँचे हुए साधु-संन्यासियों के अनेक सत्संग और भगवद् गीता, रामायण, भागवत एवं उपनिषदों पर कई प्रवचन सुने हो सकते हैं। पर आप ने कभी इन शिक्षाओं को ईमानदारी से अपने जीवन में उतारने के लिए निरंतर साधना नहीं की है। किसी धार्मिक विचार पर बौद्धिक रूप से सहमत होना, सुबह-शाम थोड़ी देर के लिए आँखें बंद कर लेना, एक आध्यात्मिक दिनचर्या का पालन करने की थोड़ी-सी कोशिश कर लेना, अपने गुरु के निर्देशों का पालन करने का हल्का-सा प्रयास कर लेना—यह पर्याप्त नहीं है। इस प्रकार की मानसिकता को पूर्णरूपेण त्याग देना चाहिए। आपको अपने गुरु और शास्त्रों के निर्देशों का अक्षरश: पालन करना चाहिए। इसमें मन को कोई ढील न दें। योग के मार्ग में आधे-अधूरे प्रयासों से कुछ नहीं होता।

कोई भी शब्द बिना सोचे-समझे मुँह से न निकालें। एक भी अपशब्द न बोलें। फालतू की बातें, बड़ी-चढ़ी बातें और बेमतलब की बातें बिल्कुल बंद कर दें। कुसंगति से बचें। मौन का पालन करें। किसी अधिकार के लिए न लड़ें। अपने अधिकारों से ज्यादा अपने कर्तव्यों के बारे में सोचें। संसारी अधिकार व्यर्थ हैं, ईश्वर-चेतना के अपने जन्मसिद्ध अधिकार पर दृढ़ रहें। तभी आप एक बुद्धिमान् साधक कहलाएँगे।

यदि आप किसी महापुरुष के सान्निध्य में रहेंगे तो आपको उनकी आध्यात्मिक तरंगों का लाभ अवश्य मिलेगा। उनका संसर्ग आपके लिए एक किले की तरह होगा। आप पर किसी बुरे प्रभाव का असर नहीं पड़ेगा और पतन का कोई डर नहीं रहेगा। तब आपका आध्यात्मिक विकास बड़ी तेजी से हो सकता है। नये साधकों को तब तक अपने गुरु या किसी अनुभवी संत के साथ रहना चाहिए जब तक कि वे गहन ध्यान लगाने के अभ्यस्त न हो जाएँ। आजकल कई साधक बिना किसी लक्ष्य के इधर-उधर भटकते रहते हैं। वे अपने गुरु के निर्देशों पर कोई ध्यान नहीं देते। वे शुरू से ही आज़ादी चाहते हैं। इसीलिये वे योग में कोई प्रगति नहीं कर पाते।

हास्य और विनोद प्रकृति की विलक्षण देन है। यह साधकों को आध्यात्मिक मार्ग पर आगे बढ़ने और अवसाद दूर करने में मदद करता है। यह प्रसन्नता लाता है और मन को प्रफुल्लित रखता है। पर आपको दूसरों का मजाक उड़ाकर उनकी भावनाओं को आहत नहीं करना चाहिए। हास्य-परिहास ऐसा हो जो दूसरों को शिक्षित करे और सही राह दिखाये।

आपको सौम्य एवं सभ्य तरीके से हँसना चाहिये। मूर्खतापूर्वक हीं-हीं करना, ठहाका लगाना अथवा अभद्र तरीके से हँसना छोड़ देना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से मन की शान्ति और गम्भीर आध्यात्मिक प्रवृत्ति भंग होती है। संत-महात्मा तो अपनी आँखों से मुस्कुराते हैं। यह बहुत भव्य और रोमांचक होता है। सिर्फ बुद्धिमान् साधक ही इसे समझ सकते है।

थोड़ी-सी भी झुंझलाहट या गुस्सा मस्तिष्क और सूक्ष्म शरीर पर असर डालता है। मन रूपी सरोवर में इन वृत्तियों को कदापि न पनपने दें। यदि आप लापरवाह और कमजोर हैं तो ये कभी भी क्रोध की एक बड़ी लहर के रूप में फूटकर बाहर आ सकते हैं। इसलिए इन्हें तुरन्त ही मिटा दें। आपको क्षमा, प्रेम और सहानुभूति जैसे उत्तम गुणों का विकास करना चाहिए। मन के सरोवर में बिल्कुल भी हलचल नहीं होनी चाहिए। यह बिल्कुल शान्त होना चाहिये, तभी ध्यान संभव है।

बहुत तेज गुस्सा शरीर के तंत्रिका तंत्र और सूक्ष्म शरीर, दोनों को नुकसान पहुँचाता है। क्रोध का असर मन पर से भले ही थोड़ी देर में खत्म हो जाए, लेकिन उससे निकलने वाली तरंगें सूक्ष्म शरीर पर लम्बे समय तक प्रभाव डालती हैं। मन पर जो हल्की-सी अप्रिय भावना पाँच मिनट तक असर करती है, वह सूक्ष्म शरीर पर दो-तीन दिन तक प्रभाव डाल सकती है। अत्यधिक क्रोध सूक्ष्म शरीर में गहरा घाव पैदा करेगा जिसे ठीक होने में महीनों लग सकते हैं। क्या आपने कभी क्रोध के इन दुष्प्रभावों के बारे में सोचा है? इसलिए क्रोध के शिकार न बनें। क्षमा, दया, करुणा और सहानुभूति से इस पर काबू पाने की कोशिश करें।

चिन्ता, अवसाद, घृणा और अपवित्र विचार आपके सूक्ष्म शरीर पर एक काली गहरी परत बना देते हैं। यह काली परत सुविचारों और अच्छे प्रभावों को अन्दर आने से रोकती है और सिर्फ कुप्रभावों के लिए जगह बनाती है। चिन्ता मन एवं सूक्ष्म शरीर को बहुत नुकसान पहुँचाती है। इससे ऊर्जा का ह्रास होता है और शरीर की स्फूर्ति खत्म हो जाती है। चिन्ता से कुछ भी लाभ नहीं होता। प्रसन्नता, आत्म-निरीक्षण और मन की व्यस्तता द्वारा चिन्ता से बचें।

योग में सफलता तभी संभव हो सकती है जब साधक गहन और निरंतर ध्यान लगाने का अभ्यास करता है। उसे स्वयं पर सदा नियंत्रण बनाए रखना चाहिए क्योंकि इन्द्रियाँ कभी भी उत्तेजित हो सकती हैं। इसीलिए भगवान कृष्ण ने श्रीमद् भगवद् गीता में अर्जुन से कहा, 'हे कुन्तिपुत्र! उत्तेजित इन्द्रियाँ बुद्धिमान् व्यक्ति के मन को भी भटका सकती हैं, क्योंकि जो मन उत्तेजित इन्द्रियों का अनुसरण करता है उसका विवेक भी ऐसे ही डगमगा जाता है जैसे तेज हवा के बहाव में नाव डगमगा जाती है।' संयम, गुरु के प्रति श्रद्धा और निरंतर अभ्यास से लम्बे समय के बाद योग में सफलता मिलती है। इसके लिए आपमें पर्याप्त धैर्य और दृढ़ता होनी चाहिए।

जो साधक एकांत में चले जाते हैं वे कुछ समय बाद प्राय: आलसी बन जाते हैं। चूँकि उनकी कोई दिनचर्या नहीं होती, उन्हें समझ में नहीं आता कि वे अपनी मानसिक ऊर्जा का उपयोग कैसे करें। वे गुरु के निर्देशों का पालन भी नहीं करते। शुरू में तो उनमें वैराग्य रहता है, लेकिन आध्यात्मिक जीवन का अनुभव न होने की वजह से वैराग्य धीरे-धीरे खत्म होने लगता है। असम्प्रज्ञात समाधि में जाने के लिए ध्यान योग का गहन और निरंतर अभ्यास जरूरी है।

अगर ध्यान का साधक उदास, कमजोर और अवसादग्रस्त है, तो निश्चित रूप से उसकी साधना में कोई त्रुटि है। ध्यान का वास्तविक अभ्यास साधक को प्रसन्न, बलिष्ठ और स्वस्थ बनाता है। अगर साधक खुद ही उदास और चिड़चिड़ा है तो वह दूसरों को आनन्द, शान्ति और बल कैसे प्रदान कर सकता है?

आपको योग के हर सोपान पर पूरी महारत हासिल करनी होगी। निचले सोपान में पूरी तरह दक्षता प्राप्त किए बिना दूसरे सोपान पर न जाएँ। पूर्ण आत्मविश्वास और प्रसन्नता के साथ धीरे-धीरे एक-एक अवस्था को पार करें। यही योग में पूर्णता प्राप्त करने का सही मार्ग है।

अगर आप आध्यात्मिक मार्ग पर तेजी से आगे बढ़ना चाहते हैं तो आपको हमेशा चोकन्ना रहना होगा। इस मार्ग पर थोड़ी-सी उपलब्धि, थोड़ी-सी शान्ति, थोड़ी-सी एकाग्रता, देवदूतों की क्षणिक झलक या फिर दूसरों का मन पढ़ लेने में थोड़ी-सी सफलता जैसी छोटी-मोटी सिद्धियों से सन्तुष्ट न हो जाएँ। अभी कई ऊँचे पर्वत चढ़ने बाकी हैं। महर्षि पतंजलि साधकों को चेतावनी देते हैं कि वे सिद्धियों के प्रलोभन में न आएँ। इस चेतावनी के बावजूद साधक सच्ची आध्यात्मिक उपलब्धि की बजाय सिद्धियों के पीछे भागने लगते हैं।

सिद्धियों की कामना हवा के उस झोंके की तरह है जो सावधानी से रखे योग के दीप को बुझा सकती है। जिस आध्यात्मिक दीप को इतने यत्न से जलाया गया हो वह थोड़ी-सी असावधानी या स्वार्थ के कारण बुझ सकता है और योगी अंधकार के गर्त में गिर सकता है। इसके बाद वह पहली जैसी ऊँचाई पर कभी नहीं पहुँच सकता।

महर्षि पतंजलि ने योग सूत्रों में नौ बाधाओं के बारे में बताया है—रोग, उदासीनता, संदेह, लापरवाही, आलस्य, कामुकता, मिथ्या ज्ञान, मन की अस्थिरता और समाधि की अवस्था में न रह पाना। इनसे पार पाने के लिए वे एक विषय पर ध्यान केन्द्रित करने के अभ्यास अर्थात् एकतत्त्वाभ्यास की सलाह देते हैं। इससे साधक में स्थिरता और वास्तविक आंतरिक शक्ति का विकास होगा। साथ ही महर्षि पतंजलि अपने बराबर के लोगों के साथ मित्रता, अपने से छोटों के प्रति दया, अपने से बढ़ों के प्रति आदर एवं दुष्ट जनों के प्रति उदासीनता का भाव रखने की सलाह देते हैं। ऐसा करने से मन में शान्ति व संयम आता है और घृणा, ईर्ष्या आदि का नाश होता है। इन गुणों का अभ्यास करने पर साधक के लिए नये

जीवन की शुरुआत होती है। इसके लिए दृढ़ संकल्प और अध्यवसाय आवश्यक है। योग में सफलता की यही कुंजी है।

साधक के लिए थकान हानिकारक है। उन्हें बहुत देर तक चलने और शरीर को थकाने से बचना चाहिए। जब ध्यान के दौरान शान्ति की अवस्था आती है तो मन को भटकने न दें। अपनी जगह से न उठें। ध्यान की अवधि को लम्बा खींचने की कोशिश करें।

आप सारी दुनिया को खुश नहीं रख सकते। चाहे आप लोकप्रिय बनें या नहीं, अपने विचारों और आदर्शों पर दृढ़ता से टिके रहें। चाहे सारा संसार ही आपका विरोध क्यों न करे, अपने सही आचार और सही जीवनशैली पर अडिग रहें। अपना कदम एक इंच भी पीछे न खींचे।

पानी की तलाश में यहाँ-वहाँ उथले गड्ढे खोदने से वे सभी जल्द ही सूख जायेंगे। एक जगह पर गहरा गड्ढा खोदेंगे तो आपको साल भर पानी मिलेगा। इसी प्रकार एक ही गुरु से आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करें। उसी के सान्निध्य और अनुशासन में कुछ वर्ष बिताएँ। जिज्ञासा और कौतूहल के कारण एक महात्मा से दूसरे महात्मा के पास जाना व्यर्थ है। एक ही व्यक्ति के आध्यात्मिक निर्देशों का पालन करें, अन्यथा आप भ्रमित हो जायेंगे।

अपने प्रयासों में ढील न आने दें। अपने भीतर की दिव्य ज्योति को सदा प्रज्वलित रखें। आप लक्ष्य के करीब हैं। प्रकाश आ गया है, आपके चेहरे पर ब्रह्म तेज झलक रहा है। आपने अथक प्रयास और धैर्य द्वारा अध्यात्म के मार्ग पर कई दुर्गम पर्वत पार किए हैं। यह वास्तव में प्रशंसनीय है। आपने बहुत अच्छी प्रगति की है। मैं आपसे बहुत खुश हूँ।

हे अमृतपुत्र! अभी तुम्हें एक और पर्वत, तथा एक और संकरा रास्ता पार करना होगा। इसके लिए थोड़े और धैर्य, थोड़ी और शक्ति की जरूरत है। तुम्हें अपने सात्त्विक अहंकार को भी खत्म करना होगा। तुम्हें सविकल्प समाधि की आनन्दमयी अवस्था से भी आगे बढ़ना होगा। तभी तुम जीवन के सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य, भूमा को हासिल कर पाओगे। मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम यह कर सकते हो।

परमानन्द के शिखर की ओर देखो! वहाँ तुम एक जीवनमुक्त योगी को देख सकते हो। वह निरंतर और अथक संघर्ष के बाद इन ऊँचाइयों तक पहुँचा है। उसने बहुत कठिन आध्यात्मिक साधना की है। उसने गहन ध्यान लगाया, कई रातों में जागरण किया। धीरे-धीरे एक-एक कदम करके वह इस शिखर तक पहुँचा। मार्ग में उसने कई पड़ावों पर विश्राम किया। रास्ते में उसने अनेक बाधाएँ पार कीं। वह धैर्य के साथ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता गया। उसने हताशा, उदासी और अवसाद पर विजय पाई। आज वह समस्त विश्व के लिए प्रकाश-स्तम्भ है। अगर तुम चाहो तो तुम भी इस शिखर पर अवश्य पहुँच सकते हो!

मानसिक स्वास्थ्य का रहस्य

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

एक समय था जबकि भारत के लोग योग का नाम सुनकर डरते थे, और विदेशों के लोग भी डरते थे। आज वह जमाना है जब भारतीय लोग इस योगविद्या को अपने देश का गौरव समझने लगे हैं और भारत के बाहर इस योगविद्या को सर्व-दु:खहारी विद्या के रूप में मानने लगे हैं। न केवल भारत के लोग, न केवल यूरोप और अमेरिका के लोग, बल्कि इस्लामी देशों में भी यह योगविद्या अपने संदेश को लेकर फैल चुकी है। इन वर्षों की अवधि में बहुत जबरदस्त परिवर्तन हुआ है। संसार के किसी भी देश में कोई शहर ऐसा नहीं है जहाँ योग विद्यालय अथवा योगाश्रम नहीं है। किसी भी शहर में चले जाइये, जिस तरह से लायन्स क्लब या रोटरी क्लब होते हैं, उसी तरह योग विद्यालय हैं। क्यों हैं? क्या यह योगविद्या संसार से दूर ले जायेगी, इसलिये यह योगविद्या बढ़ी, अथवा इस विद्या के द्वारा मनुष्य ने जीवन में जीना सीखा, जीवन में रहना सीखा और कई प्रकार के दु:खों और संतापों को बहादुर की तरह सहना सीखा, यही इस विद्या का महान् प्रताप है?

शरीर बनाम मन

जीवन को सुखी बनाने के लिये कई आवश्यकतायें हैं, उनमें एक तो है शरीर– *धर्मार्थकाममोक्षाणाम् आरोग्यमूलम्*। परन्तु शरीर के ऊपर एक चीज है जो शरीर पर शासन करती है, जिसको ऋषि-मुनि जानते थे, और आज का मनोवैज्ञानिक भी इसको जानने लगा है। शरीर के ऊपर शासन करने वाला है मनुष्य का मन। मन वह नहीं जिसके द्वारा आप सोचते हैं, मन वह है जिसके द्वारा आप अनुभव करते हैं, जिसको चेतना कहते हैं। इस मन की तमाम समष्टि को, इस मन की तमाम वृत्तियों को किस प्रकार हम सुखी बना सकते हैं, किस प्रकार स्वस्थ बना सकते हैं, इसका संदेश भी हमको योग में मिलता है।

अधिकतर लोग शरीर को सुखी बनाने के पक्ष में रहते हैं, परन्तु मन की तरफ कोई ध्यान नहीं देता। यदि किसी को सिरदर्द होता है, तो वह डॉक्टर के पास जाता है, परन्तु यदि किसी को ईर्ष्या होती है, तो उसके लिये कोई डॉक्टर नहीं है। जिस प्रकार यह स्थूल शरीर है, ठीक उसी प्रकार मनोमय शरीर भी है। वह दिखता नहीं, परन्तु इस शरीर से ज्यादा प्रतिभाशाली है और इस शरीर से कहीं ज्यादा सत्य और ठोस है। वह स्थूल नहीं, सूक्ष्म है। और जितना शक्तिशाली यह स्थूल शरीर है, उससे कहीं ज्यादा शक्तिशाली वह सूक्ष्म शरीर, वह मनोमय शरीर है। मन को भी एक शरीर के रूप में देखना चाहिये। यदि उसको शरीर के रूप में देखने

का प्रयत्न करोगे तब मालूम पड़ेगा कि जिस प्रकार से शरीर की बीमारी होती है, वैसे ही मन की भी बीमारी हो सकती है। आज मनुष्य उस स्थिति पर पहुँच चुका है, जहाँ उसको शरीर की बीमारी के निवारण के साथ-साथ मन की बीमारी के भी निवारण का उपाय करना होगा।

जिस प्रकार से रोगी अगर रोग में पथ्य ग्रहण नहीं करता, औषधि ग्रहण नहीं करता, किसी प्रकार का परहेज नहीं करता तो ज्यादा बीमार पड़ता है और उस बीमारी के बाद दूसरी बीमारी पैदा होती है, उसी प्रकार से यह जो मन की बीमारी है, वह इतनी व्यापक है कि संसार में जितने भी बड़े-बड़े संग्राम हुए हैं, वे मन की बीमारी के परिणामस्वरूप हैं।

मन की बीमारी केवल उसी को नहीं कहते हैं जिसे आप राँची के अस्पताल में पाते हैं। वह तो जब आदमी बिल्कुल बीमार हो जाता है, और उसकी बीमारी इस हद तक पहुँच जाती है तब उसको राँची या काँची ले जाते हैं। कभी-कभी यह बीमारी थोड़ी हल्की रहती है, जैसे क्रोध एक बीमारी है, ईर्ष्या एक बीमारी है, जलन एक बीमारी है, चिन्ता एक बीमारी है, डाह एक बीमारी है, ये रोग हैं, इनको आप अनैतिकता मत कहिये, क्योंकि वह एक धार्मिक अवधारणा है। हमलोगों की समझ में नहीं आता और इसीलिये हमलोग इन चीजों को पकड़ नहीं पाये हैं। आज यदि हर एक इन्सान से कहा जाए कि क्रोध रोग है, यह अनैतिकता नहीं है, यह कोई धार्मिक कमी नहीं है, तब जाकर हो सकता है कि आज का मनुष्य कुछ नये ढंग से इसको समझने लगे। वरना हमलोग कहते हैं कि भाई, तुम ईर्ष्या करते हो, तुम तो बड़े नीच हो। इसकी बजाय हमें बोलना चाहिये कि भाई, तुम ईर्ष्या करते हो, तुम तो बहुत बीमार हो, तुम्हारा मनोमय शरीर नित्य-निरन्तर बीमार रहेगा।

आप भोजन करते हैं शरीर के लिये। वह भोजन शरीर में जाकर रक्त बनता है, और शरीर पुष्ट होता है, बढ़ता है। ठीक उसी प्रकार मन के लिये भी भोजन और पौष्टिकता की आवश्यकता है। जिस व्यक्ति को यह खुराक नहीं मिलती, उसका मन दुर्बल रहता है। दुर्बल मन के क्या लक्षण हैं? जिस प्रकार निर्बल शरीर जलवायु के झोकों को सहन नहीं कर सकता, रोगों के झोंकों को सहन नहीं कर सकता, उसी प्रकार से निर्बल मन जीवन के दु:खों को सहन नहीं कर सकता। आये दिन

सुनते हैं कि फलाने को हार्ट-अटैक हो गया, फलाने को लकवा हो गया, परन्तु मैं आपको बतला दूँ कि यह उसी व्यक्ति को होता है जिस व्यक्ति का मनोबल क्षीण रहता है, जिसके मन को पौष्टिकता नहीं मिलती। इसीलिये हमारे यहाँ योग-मार्ग में पौष्टिकता की आवश्यकता पर बहुत ज्यादा जोर दिया गया है।

तो इस मन को हमने एक ठोस रूप में कल्पित किया है, और इस मन की बीमारियों को दूर करने के लिये योग में अनेकों उपाय खोज निकाले हैं। परन्तु आप यह कहेंगे कि यदि मन बीमार हो जाय तो होने दो, शरीर का इसके साथ क्या सम्बन्ध! आधुनिक मनोविज्ञान और प्राचीन काल में हमारे ऋषि-मुनियों के शास्त्र, दोनों ने यह बतलाया है कि सर्दी हो या जुकाम हो, सिरदर्द हो, मधुमेह हो, घुटने का दर्द हो, कैंसर हो या अल्सर हो, यह मन से सम्बन्ध रखता है और जब हम मन का उपचार करते हैं तो शरीर का भी उपचार होता है। जब हम मन को ठीक ढंग से रखते हैं तब हमारा शरीर भी ठीक ढंग से रहता है। यह मन शरीर पर नियंत्रण स्थापित करता है, इस शरीर का मास्टर है। इसी मन को दृष्टि में रखते हुए हमारे यहाँ राजयोग विद्या आई। हम लोगों के यहाँ कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग, ज्ञानयोग, हठयोग, मंत्रयोग, तंत्रयोग, लययोग, क्रियायोग आदि जितने योगों के नाम आपने सुने होंगे, इनका मूल लक्ष्य है मन को स्वस्थ बनाना, मन की बीमारियों को दूर करना, मन को पौष्टिकता प्रदान करना और मन में जो सहनशीलता की कमी है, उसको बढ़ाना।

यह मन सूक्ष्म है, चेतना के रूप में है, इसको पकड़ नहीं सकते। इसको पकड़ने के लिये तब उन लोगों ने अनेकों प्रकार के उपाय निकाले और अनेकों ढंग से इसके बारे में सोचना शुरू किया। भावना के कारण मन बीमार होता है तो भक्तियोग दिया, दैनिक जीवन की कठिनाइयों के कारण जो मन की बीमारी होती है, उसके लिये कर्मयोग दिया। चित्त के विक्षेप के कारण, चित्त की चंचलता के कारण मन के अन्दर में जो निराशायें, बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं, उसके लिये राजयोग दिया और नासमझी की वजह से, जिसको अज्ञान कहते हैं, मनुष्य को मृत्यु से जो कष्ट होता है, या निन्दा से जो कष्ट होता है, धन-हानि, पुत्र-हानि से जो कष्ट होता है, इसी प्रकार के कष्टों से मन जो विक्षिप्त और विकृत हो जाता है, बीमार हो जाता है, उसके लिये ज्ञानयोग दिया। गलत भोजन करने के कारण, शरीर के अन्दर गलत प्रक्रियाओं के कारण, शरीर में जो विकृत द्रव्य बनने लगते हैं, उनको दूर करने के लिये हठयोग की प्रणाली दी गई।

ध्यान की प्रक्रिया

आखिर यह मन क्या है? मालूम पड़ता है कि मन है, क्योंकि मैं विचार करता हूँ, मेरे अन्दर भावनायें उत्पन्न होती हैं, मैं सभी प्रकार की चीजों को जानता हूँ, परन्तु इस मन का दर्शन कैसे हो? लोग कहते हैं, 'यह काम, क्रोध, लोभ या मोह क्या

है, यह मन नहीं है, मन के विकार हैं,' परन्तु मन के विकारों को जानने के लिये और इस मन की समष्टि को जानने के लिये हमलोगों के यहाँ ध्यान योग की विद्या है। ध्यान में चाहे आप 'राम' पर ध्यान करें, चाहे 'कृष्ण' पर ध्यान करें, चाहे ॐ पर ध्यान करें, चाहे साकार पर ध्यान करें, चाहे निराकार पर ध्यान करें, किसी पर भी ध्यान करें, ध्यान में जो वस्तु उत्पन्न होती है, वह और कुछ नहीं, केवलमात्र आपकी चेतना कोई रूप या गुण लेकर आती है, और आप उस रूप को अपने में देखते हो। यह स्वात्म-दर्शन हुआ, और इसी समय ध्यान की क्रिया में अनेकों प्रकार के स्वप्न, अनेकों प्रकार के अनुभव, अनेकों प्रकार की बाधायें साधकों को दिखलाई देती हैं। इन्हें मन की बीमारियाँ या संस्कार के दोष जानना चाहिये। इन्हें आध्यात्मिक अनुभव नहीं कहना चाहिये।

ध्यान करते-करते जिस रूप पर भी आप ध्यान करते हैं, वह रूप जब अपने सामने स्पष्ट होने लगता है, उसके पहले कई चीजें अपने अन्दर से आती हैं। आपकी सारी संस्कार राशि जागती है और उसके बाद ध्यान करते-करते धीरे-धीरे जब हमारा मन सबल होने लगता है, स्वस्थ होने लगता है, उसमें असीम शक्ति उत्पन्न होती है। वही असीम शक्ति मनोबल है। जिस प्रकार से शरीर को हम पुष्ट बना सकते हैं, उसी प्रकार से मन को भी पुष्ट बना सकते हैं। जिस प्रकार से शरीर बीमार होता है, उसी प्रकार से मन भी बीमार होता है। हमलोगों को शरीर के बारे में बहुत बातें समझाई गई हैं, बड़ा चिकित्सा विज्ञान निकला है, तो भी लोग बीमार हैं, परन्तु मन के बारे में ये बातें समझाई ही नहीं गईं।

जब मैं भारत के बाहर गया, और मैंने लोगों से कहा कि शारीरिक स्वास्थ्य के साथ मानसिक स्वास्थ्य भी होता है, तो वे लोग इस बात को मान गये। मैंने यह भी बतलाया कि मानसिक स्वास्थ्य का एक ही रास्ता है, दो रास्ते नहीं हैं। हमलोग शारीरिक स्वास्थ्य के लिये एक रास्ता बतलाते हैं—जितना पचा सकते हो, उतना खाओ। यह शारीरिक स्वास्थ्य का रहस्य है। जो इस नियम का पालन करता है, मृत्यु भी उससे सहमती है। उसी प्रकार मानसिक स्वास्थ्य के लिये भी एक नियम है—उतना ही विचार करना जितना पचा सको।

लोग अपने विचारों को स्थिर करना नहीं जानते। पद्मासन लगा लेते हैं, आँखों को बन्द कर लेते हैं, परन्तु आँखें बन्द कर लेने के बाद भी अपने मन को ऐसा पकड़ते हैं, जैसे बच्चा गधे के पैर को पकड़ता है, जो उसको लात मार देता है। फिर मन को कैसे पकड़ा जायेगा? इस मन की जो पकड़ है वह ध्यान में शुरू होती है, और वह ध्यान कैसे शुरू होता है? जैसे छोटे बच्चे को आप आगे ले जाते हैं। कई बार लोग मुझसे कहते हैं कि हम बीस सालों से ध्यान करते आ रहे हैं, अब आप हमको ऊँचा रास्ता बतलाओ। हम उनसे यही कहते हैं कि भाई, ध्यान में जो सबसे सरल मार्ग है, वही सबसे ऊँचा मार्ग है। ध्यान बड़ी चीज नहीं है, हाँ, महान् वस्तु है। कठिन चीज नहीं है, मगर करना जानना चाहिये। इसको करने के लिये कुछ नियमों का पालन आवश्यक है। सबसे पहली चीज, किसी भी आसन में बैठ जाओ, फिर आँखें बन्द कर लो या आँखें खुली ही रहें। फिर सारे शरीर का ध्यान करो, समग्र शरीर की अनुभूति, न केवल हाथ की, न केवल नाक की, न सिर की, या पैर या पीठ की। इसको 4-5 मिनट करना। करते-करते शरीर स्थिर हो जायेगा।

शरीर को हिलाना नहीं, शरीर ऐसा हो जाए जैसे प्रतिमा की तरह अटल। उसके बाद यह जो सहज श्वास है इसको पकड़ो, वह सहज श्वास जिसे हम लोग व्यर्थ में गवाँ रहे हैं। किस तरह पकड़ो? जैसे कबीरदासजी ने कहा है–

चाँद सूरज दो बनें मसालची,
सुरत सुहागिन नाच रही!

यह सुरत है, यह चेतना है, यह ऊपर और नीचे नाचती है, मैं इसको केवलमात्र देखता हूँ, पहरेदार की तरह देखता हूँ, और जिस प्रकार एक व्यक्ति रस्सी को पकड़कर कुएँ में उतरता है, कुएँ में वह कहीं पर भी जाए, परन्तु रस्सी उसके हाथ में रहती है, उसी प्रकार कहीं पर भी आपका मन जाए, कहीं भी आपका मन भटके, कुछ भी आपके मन को हो जाए, मगर जो आपके हाथ में सुरत की रस्सी है, उसे छोड़ना नहीं। यह सुरत की डोर है और इस सुरत की डोर को लेकर नीचे उतरना पड़ता है। भगवान बुद्ध इसके बारे में बोलते थे। बौद्ध दर्शन में इसका बहुत बड़ा आख्यान है। हमारे हिन्दू धर्म में भी है, जैन धर्म में भी है, सूफियों में भी है, मुसलमानों में है, ईसाइयों में भी है, सब धर्मों में इसके बारे में कहा गया है। जब तुम बैठ जाओ, आँखों को बन्द कर लो, और यह जानो कि मैं बैठ गया हूँ, फिर यह जानो कि मैं जानता हूँ कि मैं बैठा हूँ। साक्षी, कर्म का साक्षी और साक्षी का साक्षी। यह देखो कि मैं बैठा हूँ, फिर यह जानो कि मैं जानता हूँ कि मैं बैठा हूँ। जब इतना हो जाए तब श्वास पर ध्यान शुरू करो। उस श्वास पर जो अपने आप चलती है। कबीरदासजी ने कहा है–

ऐसा जाप जपो मन लाई, सोहं सोहं सुरता गाई।
छः सौ सहस इकीसो जाप, अनहद उपजै आपे आप॥

आप मेरी बात भी सुन सकते हैं, और अपना ध्यान भी करते जा सकते हैं, 'मैं श्वास ले रहा हूँ, मैं श्वास छोड़ रहा हूँ।' ध्यान में जब मन विचलित होगा तो अपने मन में सोचना चाहिये कि मेरा मन उधर जा रहा है। फिर श्वास का ध्यान। अब मेरा मन ध्यान कर रहा है। जैसे-जैसे मन की गति होती जाए, जैसे-जैसे मन भागता है, क्षिप्त होता है, विक्षिप्त होता है, एकाग्र होता है, तो उन सब स्थितियों में साक्षी बनना होगा। मूढ़ होकर के ध्यान नहीं करना, मूढ़ अवस्था में ध्यान करोगे तो लय अवस्था को प्राप्त करोगे और हो सकता है पगला भी जाओ, बहुतों को होता है। बहुत-से लोग तो ध्यान करके ऐसा भूल जाते हैं, जैसे गाँजा पीकर बैठे हों और समझते हैं कि उन्हें अच्छा ध्यान लगा। हमने भी अपने गुरुजी से एक बार ऐसा कहा था। हम शाम को बैठ गये पद्मासन लगाकर के, सवेरे उठे तो बड़ी खुशी हुई कि अहा! छः घंटे पद्मासन लगाये, फर्स्ट क्लास समाधि लगी हमको। हमने डायरी में लिखकर

स्वामीजी की मेज पर रख दिया। स्वामीजी मेरी ओर देखकर हँसने लगे, बोले, 'अरे, समाधि इतनी जल्दी नहीं लगती है, क्योंकि समाधि लगाने वाले को समाधि का ज्ञान रहता है। उसे केवल समाधि का ही ज्ञान नहीं रहता, ज्ञान का भी ज्ञान रहता है, अपना ज्ञान रहता है, अपने को देखने वाले का ज्ञान रहता है, अपने को देखने वाले के देखने वाले का ज्ञान रहता है। वह द्रष्टा के द्रष्टा का द्रष्टा है, वह कूटस्थ है।' बहुत साल बीते, तब समझ में आया कि अपनी क्या गलती थी।

लोग जप करते हैं, उन्हें पता ही नहीं रहता कि जप कर रहे हैं। वे माला पर माला फेरते हैं, परन्तु मन नहीं भागता, मन शान्त रहता है, यह निश्चित बात है। मन बिल्कुल मूढ़ की तरह रहता है, मगर चलता है। आवश्यकता क्या है? जब श्वास पर ध्यान करो, केवल श्वास का ही ध्यान नहीं करो, परन्तु 'मैं ध्यान कर रहा हूँ' इसका भी ध्यान होना चाहिये। तब जाकर के साक्षी का उदय होता है।

किस वक्त ध्यान की इस स्थिति को पार करके असली ध्यान में जाना चाहिये और किस प्रकार गहराई में जाकर अपने अन्दर चेतना का अनुभव करना चाहिये? जो लोग साकार के उपासक हैं, उनको भी परम तत्त्व तक जाने का पूरा अधिकार है, जा सकते हैं, और जो निराकार को मानते है, वे भी आगे जा सकते हैं। मगर वास्तव में निराकार नाम की कोई वस्तु नहीं है। आँख बन्द करके जब आप बैठते हो, और जब मन धीरे-धीरे लय अवस्था को प्राप्त होने लगता है, ठीक उसी समय में अपने इष्ट का ध्यान करना चाहिये। यह मानसिक स्वास्थ्य का रहस्य है, मन के अन्दर शक्ति के सृजन का रहस्य है, मन के अन्दर संकल्प जागरण का रहस्य है। यह जीवन के उस पार की नहीं, जीवन के इस पार की बातें हैं।

एक बार मैं एक कॉलेज में गया था तो वहाँ के विद्यार्थियों ने पूछा—स्वामीजी, संकल्पशक्ति का क्या रहस्य है? हमने पूछा कि यदि हम पाँच मन का बोझा उठाना चाहें तो उसका क्या रहस्य है? उन्होंने कहा, 'सबल माँसपेशियाँ, सशक्त शरीर'। तब हमने कहा कि संकल्पशक्ति का भी रहस्य सबल मन है। जैसे कोई बीमार या कमजोर आदमी अपने से कुछ नहीं कर सकता, इसी प्रकार जिस आदमी का मन कमजोर होता है, यदि उसे कुछ भी कह दो, गाली ही दे दो, तो उसे रात-रात भर नींद नहीं आयेगी। एक समय मेरे जीवन में भी कुछ ऐसी घटना घटी कि लगातार कोई कुछ भी बोले, मेरी समझ में नहीं आता था कि क्या है। मैंने सोचा कि बिस्तर में जाकर चिन्तन करेंगे तो वहाँ नींद आ गई। फिर सोचा दूसरे दिन सोचेंगे तो फिर नींद आ गई। हमने सोचा इसका कारण क्या है? हमने लोगों से कहा कि भाई, हमारे मन पर तो कोई असर नहीं पड़ता, कहीं हम बीमार तो नहीं हैं। फिर अन्वेषण के बाद पता चला कि जो आदमी जितना बलिष्ठ होता है, उसे भार उतना कम मालूम पड़ता है, और जो आदमी जितना कमजोर होता है, उसे थोड़ा भी भार ज्यादा मालूम पड़ता है। तो जिसके जीवन में निर्बलता है, उसे जीवन में निन्दा का, स्तुति का

भार मालूम पड़ता है। जिसके मन में निर्बलता है, उसे सफलता का, असफलता का भार मालूम पड़ता है, हार और जीत का भार, सुख और दु:ख का भार मालूम पड़ता है। मगर जैसे-जैसे आपका मन सबल होते जाता है, वैसे-वैसे ये जो द्वन्द्व मैंने आपको बताये हैं, उनका भार कम प्रतीत होने लगता है। निन्दा मालूम पड़ती है, पर प्रभाव नहीं होता। एकाएक झोंका आता है, फिर आदमी संभल जाता है।

क्या गृहस्थाश्रम में इस क्षमता की जरूरत नहीं है? आये दिन जीवन में कितनी घटनायें होती हैं, आये दिन कितनी बातें होती हैं! इस प्रकार के मानसिक बल को प्राप्त करने के लिये हमलोगों को योगमार्ग की आवश्यकता क्यों नहीं है? योग आज के पदार्थवादी, भौतिकवादी मनुष्य की परम आवश्यकता है। आप भगवान को मानो या न मानो, मगर योग का आप के मन से गहन सम्बन्ध है।

–मूलत: योगविद्या के अक्टूबर 1970 अंक में प्रकाशित

वह योग क्या जो भोगों के बीच सध न सके? जीवन का प्रत्येक कर्म पूर्ण एकाग्रता के साथ करो। छोटा हो या बड़ा, प्रत्येक कर्म के रग-रग में तुम्हारी एकाग्रता और भाव के मोती पिरोये जाने चाहिए। भोग है सीढ़ी और योग मंजिल। भोगों की सीढ़ी पर पैर रखते हुए ऊपर चढ़े चलो। भोगों के रस का चींटा बनकर स्वाद लोगे तो उसी में डूबकर प्राण गवाँ देने पड़ेंगे। किन्तु मधुमक्खी बनोगे तो भोगों का संचय करके भी तुम्हारे पंख उससे अलग रहेंगे। मधु का स्वाद लो पर आकाश में ही रहो, अर्थात् अलिप्त रहो।

– स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

धारणा का महत्त्व

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

धारणा मन की एकाग्रता है, किसी एक बिन्दु पर मन की सजगता को अविचल रखने की क्षमता है। धारणा की पूर्णता ही ध्यान तक पहुँचाती है। धारणा की अवस्था में मन अन्य बाह्य वस्तुओं के प्रति सजग नहीं रहता।

धारणा का इतना महत्त्व क्यों है? यदि मन की तुलना एक बिजली के बल्ब से की जाए तो इसका सही उत्तर शीघ्र मिल जायेगा। बिजली के बल्ब का प्रकाश सभी दिशाओं में फैलता है, ऊर्जा बिखरती रहती है। आप उस बल्ब से पाँच फुट की दूरी पर खड़े हो जायें तो आपको प्रकाश तो दिखेगा, पर ताप का अनुभव नहीं होगा, हालाँकि उस बल्ब के भीतर के फिलामेन्ट में पर्याप्त ताप विद्यमान रहेगा। इसी प्रकार मन में भी प्रच्छन्न रूप में अपरिमित शक्ति है, परन्तु यह सभी दिशाओं में बिखरी हुई है। मन एक-के-बाद-एक विभिन्न वस्तुओं के विषय में सोचता रहता है, बिना किसी एक खास विषय की गहराई में गये। ऐसा मन अपनी शक्ति का सदुपयोग नहीं करता।

इधर हाल में विज्ञान ने लेज़र की खोज की है, जिसमें एक ही स्रोत से उत्पन्न प्रकाश किरणों को एक-दूसरे की सीध में कर दिया जाता है, जिससे वे सभी एक ही दिशा में गतिमान होती हैं। वे एक-दूसरे के साथ समस्वर होकर स्पन्दित होती हैं। लेज़र का प्रकाश स्रोत उस बल्ब से बड़ा नहीं भी हो सकता है जिसकी चर्चा हमने ऊपर की है, फिर भी यदि आप को उससे पाँच फुट की दूरी पर खड़ा होना पड़े तो लेज़र किरण आपके शरीर को जलाती हुई, शरीर के आर-पार एक छिद्र बना देगी। यही अन्तर है सामान्य प्रकाश और संकेन्द्रित प्रकाश में।

इसी प्रकार संकेन्द्रित विचार में भी अपार शक्ति है। इसमें महान् उपलब्धियाँ प्राप्त करने तथा कल्पनातीत परिमाण में कार्य करने की क्षमता है। एकाग्र एवं संकेन्द्रित मन विश्रान्त मन भी होता है। जब आप किसी चीज में गहराई से संलग्न हो जाते हैं तो आप स्वत: विश्रान्त अवस्था में आ जाते हैं। जीवन में आप जो भी करते हैं उसके लिए धारणा अत्यावश्यक है, क्योंकि यह मन को सभी दिशाओं में निरुद्देश्य भटकने से रोकती है। बिना एकाग्रता के आप कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते। इस कथन के सत्य को जानने के लिए आपको केवल अपने चारों ओर देखना भर है।

एकाग्रता के साथ किया गया कार्य आनन्दायक हो जाता है। एकाग्र मन वाला व्यक्ति कोई भी कार्य अधिक दक्षतापूर्वक कर सकता है। जो व्यक्ति एकाग्र नहीं हो सकता तथा जो हाथ में लिये काम को करते समय अन्य चीजों के विषय में सोचता है, वह भूल अवश्य करेगा तथा काम को यदि पूरा भी कर ले, तो आवश्यकता से अधिक समय लगायेगा। काम करते समय वह सदा यही सोचता रहेगा कि समय

कितना धीरे-धीरे बीत रहा है, वह अपने विषय में, अपनी समस्याओं और अपने परिवार के विषय में चिन्ता करता रहेगा। अपर्याप्त एकाग्रता के कारण संलग्नता अपर्याप्त होगी, इसलिए कार्य भी ठीक से नहीं होगा। इस प्रकार आध्यात्मिक साधना के साथ-साथ दैनिक जीवन में भी धारणा अनिवार्य है।

मन की गुणवत्ता

संकेन्द्रित मन शक्तिशाली होता है और विक्षिप्त मन दुर्बल। मानसिक शक्ति के विकास के लिए आपको एकाग्र मन विकसित करना होगा। विक्षिप्त मन में मानसिक शक्ति नहीं होती। यदि विचार बिखरे हों तो धारणा के विशेष अभ्यासों द्वारा उन्हें संकेन्द्रित किया जा सकता है। तब आपका मन इतना शक्तिशाली हो जायेगा कि आप दूसरों के मन को भी प्रभावित कर सकते हैं। आप अपने आचरण, अपने व्यक्तित्व और अपने संपूर्ण जीवन को प्रभावित कर सकते हैं। यदि आपको मानसिक व्याधि है, श्वास का रोग है या अन्य कोई गड़बड़ी है, तो आप केवल अपनी संकल्प-शक्ति से उसे ठीक कर सकते हैं। आप इस संकल्प-शक्ति का विकास कैसे कर सकते हैं? इसका रहस्य मन को एक बिन्दु पर एकाग्र करने में निहित है।

सबल मन का क्या अर्थ है? सबल मन वह है जो अपने निर्णय का पालन कर सकता है। इसके विपरीत निर्बल मन एक निर्णय लेता है, पर करता कुछ और है। 'कल से मैं यह कार्य करूँगा,' पर जब कल आता है तो आप सब कुछ भूल जाते हैं। आप वहीं-के-वहीं रह जाते हैं, क्योंकि आपका मन विक्षिप्त है। इतिहास में आपने जितने महापुरुषों के विषय में पढ़ा है, चाहे वे कलाकार हों, लेखक हों, संगीतज्ञ

हों, राजनीतिज्ञ हों, सेनापति हों, वैज्ञानिक हों या संत-महात्मा, उन्होंने अपने मन के स्वरूप के कारण महानता पाई है। प्रकृति के किसी चमत्कार या भाग्य के स्पर्श से वे महान् नहीं हुए हैं। वे अपने मन की गुणवत्ता के कारण महान् हुए हैं। उन सभी का मन एकाग्र और अन्ततः प्रतिभासम्पन्न था।

यदि आप अपने जीवन में कुछ करना या बनना चाहते हैं तो अपने मन की गुणवत्ता को उन्नत करना होगा। यदि आपका मन दुर्बल है तो प्रत्येक क्षेत्र में आपका प्रदर्शन निम्न कोटि का होगा। यदि मन का स्वरूप उन्नत है तो आपका प्रदर्शन भी तदनुरूप उन्नत होगा। मन का उन्नत स्वरूप विकसित करने हेतु आपको अपना, अपने उद्देश्यों का विश्लेषण करना होगा तथा प्रतिदिन कुछ समय धारणा के अभ्यास में लगाना होगा।

धारणा के विषय

धारणा का अभ्यास अनेक प्रकार से किया जा सकता है। धारणा का विषय सम्पूर्ण शरीर के किसी एक स्थान, यथा चिदाकाश, हृदयाकाश, दहराकाश, अथवा किसी एक चक्र में देखा या खोजा जा सकता है। धारणा तो शरीर के किसी अंग, शारीरिक प्रक्रियाओं, शारीरिक स्थिरता, विश्रान्ति या तनाव पर भी की जा सकती है। श्वास को भी धारणा का विषय बनाया जा सकता है।

प्रायः किसी भी वस्तु को धारणा का आधार या विषय बनाया जा सकता है। परन्तु जब एक बार किसी वस्तु या विषय का चुनाव कर लिया तो फिर अपनी दैनिक साधना में केवल उसी वस्तु का उपयोग किया जाना चाहिए। आपके मन में वह विषय सहज रूप से आना चाहिए। कुछ व्यक्तियों को उनका विषय स्वप्न में या एक झलक के रूप में दिखाई पड़ जाता है। स्वाभाविक चयन का यह सर्वोत्तम उपाय है। अन्य लोगों को अपने लिए उपयुक्त विषय का चयन स्वयं करना होगा। ऐसे व्यक्तियों की सुविधा की दृष्टि से एक विस्तृत सूची नीचे दी गई है। इस सूची से आपको अनुमान हो जायेगा कि यह विषय कितना व्यापक है और चयन के लिए कितने अधिक विकल्प हैं। वैसे इन वस्तुओं की संख्या असीम है, पर सुविधा हेतु निम्नांकित सूची दी जा रही है। एक बार सरसरी दृष्टि से इस सूची को देखते जायें, सम्भव है कोई एक वस्तु आपको आकृष्ट कर ले या कोई भी वस्तु न जँचे। यद्यपि इस सूची में आपको कुछ भी न जँचे, परन्तु आपके मन में या कल्पना में कोई अनुकूल वस्तु अचानक प्रकट हो जायेगी, इस प्रकार बाद में स्वाभाविक रूप से एक प्रतीक मिल ही जायेगा। जब कभी आप पूर्णरूपेण विश्रान्त रहेंगे, संभवतः यह उसी समय घटित होगा।

देवता, संत, अन्य व्यक्ति—विष्णु, ब्रह्मा, शिव, त्रिमूर्ति, सीता, राम, राधा, कृष्ण, सरस्वती, पार्वती, गणेश, हनुमान, लक्ष्मी, दुर्गा, काली, वरुण, वायु, इन्द्र, सूर्य, सोम, क्राइस्ट, मरियम, बुद्ध, लाओत्सु, मिलारेप्पा, नरोपा, संत

फ्राँसिस, स्वामी शिवानन्द, साईं बाबा, आपके गुरु, अन्य कोई देवता या सन्त, आपके पिता, माता, पति-पत्नी, पुत्र, पुत्री, सम्बन्धी, मित्र, शिक्षक या प्रेरणादाता।

पवित्र वस्तुएँ–शिवलिंग, त्रिशूल, शालिग्राम, ज्योति, क्रॉस, वेदी, मन्दिर, स्फटिक का गोला, किसी संत की मूर्त्ति, माला, शंख, ॐ का चिह्न।

पवित्र स्थल–मंदिर, गिरजाघर, पिरामिड, मस्जिद, आश्रम, पगोडा, समाधि।

प्राकृतिक दृश्य–पर्वत, पहाड़ी, घाटी, मरुस्थल, जल-प्रपात, बालू के टीले, सागर तट, जंगल, उपवन, धान के खेत, पुष्प-वाटिका, फलोद्यान, मेघाच्छन्न आकाश, वर्षा, कुहासा, आँधी, हिमपात, बवँडर, भूकम्प, सागर, लहरें, जापानी उद्यान, कमल-ताल, धूप, कुआँ, झील, तेज झरना, फव्वारा, जलाशय, बर्फ, हिम।

चेतन प्राणी–हाथी, मृग, शेर, बाघ, बन्दर, गाय, चील, गौरैया, हंस, कौआ, मुर्गी, तितली, मोर, मगर, सर्प, कुत्ता, बिल्ली, घोड़ा, गधा, कमल, सूर्यमुखी, गुलाब, चमेली, नारियल का वृक्ष, आम का पेड़, घास।

अचेतन वस्तुएँ–पृथ्वी, आग, जल, हवा, आकाश, मेष-वृषादि राशियाँ, नीलम, हीरा, स्फटिक, मोती, जस्ता, लोहा, सोना, चाँदी, पीतल, ताम्बा, चन्द्रमा, मंगल, शुक्र, बृहस्पति, बुध, सूर्य।

रंग एवं आकृतियाँ–लाल, नीला, हरा, पीला, आसमानी, नारंगी, गुलाबी, काला, उजला, बैंगनी, चाँद की चाँदनी, सूर्य का प्रकाश, अग्नि, दीप शिखा, बिजली की कौंध, तारा, षट्कोण, चतुर्भुज, बिल्व-पत्र, त्रिभुज, बालचन्द्र, संस्कृत के बीज मंत्र, चक्रों के चित्र, यन्त्र, मण्डल, नाड़ी, प्राण।

मानसिक संघर्ष से बचें

आप किसी महान् संत, ज्योति, ध्वनि, रंग, आकृति, विचार, या अन्य किसी चीज पर धारणा का अभ्यास कर सकते हैं। पर एक बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए। धारणा की साधना में यह आवश्यक नहीं है कि आप धार्मिक प्रतीक का ही चुनाव करें। कभी-कभी तो जो विचार आपकी चेतना पर अधिकाधिक प्रभाव डालते हैं, उनका भी उपयोग किया जा सकता है। मन के साथ संघर्ष करने का कोई लाभ नहीं है। धारणा की साधना में आप किसी धार्मिक प्रतीक की बात सोचते हैं, पर आपका मन उसे नहीं मानता, क्योंकि आपका मन उस प्रकार अनुकूलित है नहीं। जब आप किसी ऐसी वस्तु पर धारणा करना चाहते हैं, जो आपके मन के अनुकूल नहीं है तब आपका मन वहाँ से हट जाता है। किन्तु जब आप किसी अत्यन्त सामान्य चीज पर विचार करते हैं, तब यह विकर्षण नहीं होता।

जब आप गलत प्रतीक पर धारणा करते हैं, तब चित्त-विक्षेप होता है और मानसिक संघर्ष शुरू हो जाता है। यह समझना अत्यावश्यक है कि जब आप धारणा का अभ्यास कर रहे हों, तब आपके मन में अल्पतम संघर्ष होना चाहिए। अपने मन से संघर्ष करना व्यर्थ है। आखिर कौन किससे संघर्ष करता है? दो मन तो हैं नहीं। चेतना तो एक ही है, परिस्थिति अनुसार वह मन की अनेक वृत्तियों के रूप में प्रकट होती है। जब आप खुद से संघर्ष करते हैं, उस समय आप अपनी ही वृत्तियों के बीच कलह उत्पन्न कर रहे होते हैं। जब आपकी अपनी ही वृत्तियों के बीच संघर्ष तीव्र हो जाता है, तब आपको सिजोफ्रेनिया जैसे मनोरोग का दौरा पड़ता है। अधिकतर मनोरोगी अपने ही मन के शिकार हैं।

इसलिए यदि आप किसी निर्दिष्ट विधि से धारणा नहीं कर पाते, तब आप अपनी विधि का चयन स्वयं करें। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आप जो भी प्रतीक चुनें वह इतना बाध्यकारी हो कि आपका मन अपने आप उसके प्रति आकृष्ट हो जाए और उसके साथ पूर्णतया तादात्म्य हो जाय। जब इस प्रकार आप अभ्यास करेंगे, तब आप आसानी से धारणा में प्रवेश करने लगेंगे। जब आप ध्यान का अभ्यास करें तो आप चित्त-विक्षेप को भी धारणा का विषय बना सकते हैं। ऐसा ही एक अनुभवी योगी ने किया था जिसकी कथा कुछ ऐसी है।

किसी जमाने में एक राजा था जो अपनी धन-सम्पत्ति के प्रति अत्यधिक आसक्त था, फिर भी वह ध्यान का अभ्यास करना चाहता था, क्योंकि वह अपने अपार वैभव की निस्सारता को समझने लगा था। एक योगी ने उस राजा को कुछ निर्देश दिये। राजा पूरी श्रद्धा से ध्यान करने बैठा, परन्तु जब भी वह परमात्मा पर मन को एकाग्र करना चाहता तो वह विफल हो जाता। अनायास ही उसका मन एक सुन्दर स्वर्ण हार के चारों ओर मंडराने लगता, जो उसे विशेष रूप से प्रिय था। उसकी मुग्ध दृष्टि के सामने वह हार अपने मनमोहक इन्द्रधनुषी रंगों सहित चमक उठता। जैसे ही उसे उस कल्पना का भान होता वह संघर्ष कर पुन: परमात्मा की ओर लौटता। पर वह जितना ही अधिक परमात्मा पर मन एकाग्र करने का प्रयास करता, उसे उतनी ही अधिक निराशा का अनुभव होता। परमात्मा हर बार उसके मन में उस सुन्दर इन्द्रधनुषी हार में बदल जाते।

वह पूर्ण नम्रता के साथ योगी के पास अगले निर्देश के लिए गया। योगी अनुभवी था, उसे पता था कि किस प्रकार कमजोरी को ही शक्ति के स्रोत में परिवर्तित किया जा सकता है। उसने राजा से कहा, 'जब तुम्हारा मन उस हार में इतना आसक्त है, तब तुम वहीं से ही अपना अभ्यास प्रारम्भ करो। उसकी सुन्दरता और उसकी छटा पर ही धारणा करो।' वास्तव में वह हार तो मात्र धातु था, कल्पनाशील मन ही उसमें सुन्दरता एवं रंग भर रहा था। अत: मन के स्वभाव को समझो जिसने इस दृश्य संसार को रचा है।

धारणा की क्षमता

कठोपनिषद् के एक मंत्र में धारणा की चर्चा है, जहाँ यमराज युवा साधक, नचिकेता को उपदेश दे रहे हैं–

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ॥

अर्थात् मन और इन्द्रियों का दृढ़ नियंत्रण ही धारणा योग है। व्यक्ति को सतर्क रहना चाहिए, क्योंकि इस योग को प्राप्त करना तो कठिन है, पर इसे खो देना सरल है।

धारणा का तात्पर्य एकाग्रता और तीक्ष्णता से है। जिस प्रकार हमें लिखने के लिए एक नुकीली पेन्सिल की आवश्यकता होती है, काटने के लिए एक तेज छुरी की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार एकाग्रता के अभ्यास द्वारा मन को भी तेज बनाना चाहिए। एक कुन्द छुरी से हम काट नहीं सकते, एक घिसी पेन्सिल से लिख नहीं सकते, क्योंकि उस पर जो दबाव हम डालते हैं, वह बड़े क्षेत्र में फैल जाता है, वह संकेन्द्रित नहीं रहता। एकाग्र मन का महत्त्व तो सर्वमान्य है, परन्तु सामान्य

मन केन्द्रित होकर काम नहीं करता। वह विक्षिप्त रहता है, वह विशाल क्षेत्र और असंख्य बिन्दुओं पर बिखरा रहता है। इसलिए हम उसकी अन्तर्निहित शक्ति का एक अंश भी उपयोग नहीं कर पाते हैं।

जीवन में हम बहुत-सी चीजों के विषय में जानते हैं—अपने काम-काज के विषय में, अपने परिवार के विषय में, अपने समाज, पर्यावरण, इतिहास, विज्ञान और राजनीति के विषय में, पर हम अपने मन को सवेच्छापूर्वक नियंत्रित और निर्देशित करना नहीं जानते। हमलोगों में प्राथमिक शिक्षा के रूप में अपनी धारणा शक्ति को विकसित ही नहीं किया गया है। जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है, मन अधिक बिखरता जाता है, क्योंकि तनाव और परेशानियाँ बढ़ती जाती हैं। इसका परिणाम होता है मन की तीक्ष्णता में ह्रास, गलत निर्णय, क्षीण स्मृति, और अन्ततः जराजीर्णता।

हम बाह्य जगत् और विज्ञान के विशेषज्ञ हो सकते हैं, पर हम अपने मन के ही मालिक नहीं हैं। किसी यंत्र पर नियंत्रण का अर्थ होता है, जब हम चाहें उसे चलायें, तेज करें, धीमा करें या बन्द कर दें। एक अनुशासित मन से भी यही अपेक्षा होती है। अनुशासित मन तभी सोचेगा, जब आप चाहेंगे, तथा उसी विषय पर सोचेगा जिस पर आप सोचने का निर्णय लेंगे। जब तेजी से या धीमे से सोचना चाहें या बिल्कुल सोचना न चाहें, तो वह उस आदेश का तत्काल पालन करे। एक अनुशासित मन में जैसे ही कोई विचार आये, शीघ्रता से उसे जान लिया जाए और निर्देशित कर दिया जाए। उस विचार में यह क्षमता न रहे कि वह मन को इस ओर या उस ओर बहा ले जाए।

यदि हम साधु-संन्यासियों, संत-महात्माओं और योगियों के जीवन का अध्ययन करें तो हम पायेंगे कि एक चीज सब में समान है। वे अत्यधिक एकाग्र और संयत जीवन यापन करते हैं, जो उस आदर्श के प्रति समर्पित होता है, जिसे वे जीवन का सर्वोच्च ध्येय मानते हैं। नियमित और सतत् साधना द्वारा वे अपने मन पर नियंत्रण प्राप्त करते हैं। सामान्यतः ऐसे महापुरुषों के दर्शन मात्र से हमें शान्ति, स्थिरता और आत्मसंयम का आभास मिलता है।

मनुष्य के समस्त उदात्त गुणों का मूल धारणा की क्षमता ही है। इसके विकास के लिए कठिन प्रयास की आवश्यकता है तथा इसके लिए विशेष अवधान भी अनिवार्य है। एक डिग्री प्राप्त करने की अपेक्षा एकाग्र मन का विकास कहीं अधिक कठिन है। एक सामान्य मनुष्य इस धारणा की क्षमता के साथ जन्म नहीं लेता, अतः यह आवश्यक है कि जो पूर्व से नहीं है उसका सृजन करने के लिए अपने स्वभाव को बदलें। इसका पूर्ण लाभ प्राप्त करने के लिए धारणा की व्यक्तिगत रूप से साधना और अनुसंधान करना अत्यावश्यक है।

—'धारणा दर्शन' से उद्धृत

रामचरितमानस का यौगिक सार

संन्यासी मंत्रनिधि, रामायण मण्डली, मुंगेर

जैसे मानव शरीर में सात चक्रों का स्थान मेरुदण्ड में मूलाधार से लेकर सहस्रार तक बताया गया है, वैसे ही रामचरितमानस में भी बालकाण्ड से लेकर उत्तरकाण्ड तक सात काण्डों का वर्णन किया गया है। साधना की शुरुआत मूलाधार चक्र से प्रारम्भ होती है, जहाँ से कुण्डलिनी शक्ति जागृत होकर सभी चक्रों का भेदन करते हुए सहस्रार में शिव से एकाकार हो जाती है। इसी तरह रामचरितमानस के बालकाण्ड को 'नयन काण्ड' कहा जा सकता है, जहाँ से जीव की दृष्टि खुलती है और दृष्टिदोष दूर होने लगता है–

गुरुपद रज मृदु मंजुल अंजन, नयन अमिअ दृग दोष बिभंजन।

इसी तरह रामचरितमानस के प्रत्येक काण्ड की एक संक्षिप्त, सटीक परिभाषा दी जा सकती है–

अयोध्याकाण्ड: *वचन काण्ड–*

रघुकुल रीति सदा चलि आई, प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई।

अरण्यकाण्ड: *मन काण्ड–*

मम गुन गावत पुलक सरीरा, गदगद गिरा नयन बह नीरा।

किष्किंधा काण्ड: *चरणकाण्ड–*

आगें चले बहुरि रघुराया, रिष्यमूक पर्बत निअराया।

सुन्दरकाण्ड: *श्रवणकाण्ड–*

श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि-त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर॥

लंकाकाण्ड: *भवनकाण्ड–*

कर गहि पतिहि भवन निज आनी, बोली परम मनोहर बानी।

उत्तरकाण्ड: *दर्शनकाण्ड–*

छन महिं सबहि मिले भगवाना, उमा मरम यह काहुँ न जाना।

उत्तर काण्ड सप्तम दर्शन है, जिसे पंचम वेद भी कह सकते हैं, क्योंकि स्वयं शिव पंचमुख हैं और पाँचों मुखों से वर्णन किये हैं। रामचरितमानस का प्रथम सोपान गुरु से शुरू होता है और गुरु की कृपा से ही अंतिम सोपान में भगवान का दर्शन होता है। इन सातों के बीच में संकल्प-विकल्प चलता है, मन डगमग-डगमग भी होता है, लेकिन अगर साधक उन थपेड़ों को पार करते हुए आगे बढ़ता है और अपनी तप-साधना में अडिग रहता है, अपने संकल्प को कभी टूटने नहीं देता है, तब माँ पार्वती के अलौकिक तप संबंधी रामचरितमानस की ये पंक्तियाँ चरितार्थ होती हैं–

सतीं मरत हरि सन बरु मागा। जनम जनम सिव पद अनुरागा॥
तेहि कारन हिमगिरि गृह जाई। जनमीं पारबती तनु पाई॥
उपजेउ सिव पद कमल सनेहू। मिलन कठिन मन भा संदेहू॥
दुराराध्य पै अहहिं महेसू। आसुतोष पुनि किएँ कलेसू॥
करै सो तपु जेहिं मिलहिं महेसू। आन उपायँ न मिटिहि कलेसू॥
उर धरि उमा प्रानपति चरना। जाइ बिपिन लागीं तपु करना॥
नित नव चरन उपज अनुरागा। बिसरी देह तपहिं मनु लागा॥
कछु दिन भोजनु बारि बतासा। किए कठिन कछु दिन उपबासा॥
देखि उमहि तप खीन सरीरा। ब्रह्मगिरा भै गगन गभीरा॥

दोहा: *भयउ मनोरथ सुफल तव सुनु गिरिराजकुमारि।*
परिहरु दुसह कलेस सब अब मिलिहहिं त्रिपुरारी॥

माँ पार्वती ने भगवान शिव को पाने के लिए पहले संकल्प, फिर तप, यहाँ तक कि पंचाग्नि साधना भी कर ली। तब जाकर वे शिवजी को प्राप्त कर सकीं। ऐसी साधना इस कलियुग में परमहंस स्वामी सत्यानन्द महाराज ने की। पहले जप, फिर तप, फिर यज्ञ और अंत तक दान देने में लगे रहे। जप से उनकी आँखें खुली, तप से भगवान से सीधा संपर्क हुआ, आवाज सुनाई दी–'पड़ोसियों की सेवा'। इस सेवा का नाम उन्होंने राजसूय यज्ञ दिया। वैसे यज्ञ का साधारण अर्थ है कि यज्ञ भगवान को स्वाहा बोलकर आहूति देना, क्योंकि स्वाहा उनकी पत्नी है और वही उस हविष्यान्न को यज्ञ भगवान तक पहुँचाती हैं। लेकिन स्वामी सत्यानन्द जी जैसे संत का यज्ञ यहाँ तक सीमित नहीं है। उन्होंने गिरते को उठाया, उनकी पीड़ा को महसूस किया, उन्हें तृप्त करके ईश्वर की प्रेरणा को प्राप्त किया। केवल एक छोटे-से हवनकुण्ड में हविष्य नहीं डाला, बल्कि प्रत्येक घर के चूल्हे को जलवाकर यज्ञ सम्पन्न किया। आम लोगों का यज्ञ अपने कल्याण के लिए होता है, लेकिन संतों का यज्ञ आत्मभाव से भरा होता है, हर परिवार की जठराग्नि को शान्त करना उसका लक्ष्य होता है। गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं–

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मचि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥6.30॥

जो मुझे सबमें देखता है, जो सबको मुझमें देखता है–यही भाव श्री स्वामीजी में था, और यही यज्ञ का सार है। इसी सार को हम सबों को भी हृदय में धारण करना होगा। अपनी कमाई का नौ भाग स्वार्थ में, एक भाग परमार्थ में यानि गरीबों के लिए चूल्हा जलवाने का यज्ञ। आखिर ईश्वर भी यही चाहते हैं कि मेरी कोई भी संतान भले भूखे जगे, पर भूखे सोये नहीं। इसकी व्यवस्था उन्हीं को करनी है जिनके पास दिल है और प्रचुर धन है। धन की तीन ही गति बतायी गयी है–भोग, दान, नहीं तो नाश। इसीलिए रामचरितमानस में कहा गया है–

प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान॥

यह दान की ही बात नहीं, बल्कि अध्यात्मवाद की बात है जिसमें हमारी सोच होनी चाहिए कि हमलोग उस विराट् के मात्र एक अंश हैं और जो हमलोगों के पास है उसमें उसका भी एक अंश सन्निहित है। यही सोच हमारे अन्दर भी आत्मभाव को लायेगी। तब जाकर अंन्तिम मंजिल, अपने जीवन के उत्तर काण्ड में पहुँच पायेंगे, नहीं तो जन्म-जन्म तक लंकाकाण्ड के युद्ध में लगे रह जायेंगे। यही रामचरितमानस के दर्शन का सार है।

अम्माजी – एक विलक्षण व्यक्तित्व

संन्यासी श्रद्धामति

यस्य देवे पराभक्तिः यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्था प्रकाशन्ते महात्मनः॥

आदर्श शिष्य के बार में उपनिषद् में कहा गया है कि जिसकी देवता में परम भक्ति हो और गुरु के प्रति भी उतनी ही भक्ति हो जितनी देवता के प्रति, वही शिष्य उपनिषदों के अर्थ को समझ सकता है और सत्य को जान सकता है। अम्माजी इस कसौटी पर खरी उतरीं। उन्होंने कभी भी भगवान राम और परमहंसजी में कोई अंतर नहीं समझा।

उनकी सरलता एवं सादगी के कई किस्से हैं और ये सारे किस्से बस एक ही बात कहते हैं कि निजी जीवन की ऊँचाइयाँ चढ़ते हुये भी वे सभी को बराबरी के भाव से देखना कभी नहीं भूलीं। उनका जीवन दर्शन देखेंगे तो पायेंगे कैसे हमेशा मर्यादा रखते हुये वे समय के साथ कदम-से-कदम मिलाकर चलीं।

प्रेम साधना

यदि उनकी बात चली और प्रेम के बारे में कुछ नहीं कहा तो सब व्यर्थ है। परमहंसजी ने उन्हें प्रेम साधना दी थी जो 'योग साधना' पुस्तक में वर्णित भी है। जैसे योग

निद्रा के तीन चरण होते हैं, प्राथमिक, मध्यम और उच्च, वैसे ही प्रेम साधना के भी ये तीन चरण होते हैं। अम्माजी ने इस साधना को सिद्ध किया था। यह कोई गुप्त साधना नहीं, बल्कि सर्वसुलभ साधना है जिसे कोई भी निष्ठावान् व संवेदनशील साधक कर सकता है।

वह प्रेम ही था जिसने उन्हें अपने इष्ट और गुरु से जोड़े रखा। मेरे साथ भी उनका रिश्ता प्रेम का ही था। वास्तव में इस दुनिया में प्रेम से बड़ी कोई शक्ति नहीं है। भाग्यशाली होते हैं वे लोग जो सच्चे प्रेम का अनुभव कर पाते हैं।

योग साधना

अम्माजी ने अपनी पुस्तक 'मेरे आराध्य' में लिखा है, 'साधना के बिना जीवन में आत्मविश्वास नहीं आता। जब तक आत्मविश्वास नहीं आता तब तक रोज-रोज दुनिया में जो तकलीफें होती हैं, वे दूर नहीं होतीं। तुम्हारे पास जो शक्ति बीज रूप में यानि गुरुमंत्र रूप में विद्यमान है, उसे साधना के द्वारा विकसित करके अपनी समस्याओं का निराकरण कर सकते हो। मैं ऐसा नहीं कहती कि तुम्हारी शत-प्रतिशत समस्याओं का समाधान हो सकता है, किन्तु बहुत हद तक तुम अपनी तकलीफों का निराकरण स्वयं ही अवश्य कर सकते हो। इसके लिये 15 से 20 मिनट आसन, प्राणायाम, जप, ध्यान आदि का अभ्यास नियम बनाकर करना चाहिये। इससे शक्ति का उद्‌भव होता है, जिसको आत्मविश्वास कहते हैं।' अत: पहले गुरु पर विश्वास, फिर आत्मविश्वास और आत्मविश्वास को बढ़ाने के लिये योगाभ्यास।

बदले में कुछ मिलने की चाह नहीं

अम्माजी नि:स्वार्थ भावना की प्रतिमूर्ति थीं। भवानी प्रसाद मिश्र ने अपनी एक कविता में लिखा है–'वही जिया जिसने किया सूरज की तरह नियम से बेगार करने का हिया।' कुछ अच्छा करके बदले में कुछ मिलने की चाह हो तो ऐसे किये का क्या करें? जीना तो उसी का है जो सूरज की तरह नियम से, बिना किसी छुट्‌टी के सब को रोशनी बाँटने की बेगार करता है।

अम्माजी का शरीर पंचतत्त्व में विलीन हो गया, लेकिन उनका नाम और उनके विचार आज भी हमें स्पंदित कर रहे हैं, प्रेरित कर रहे हैं। वे इस बात को सिद्ध कर गईं कि अच्छाई का कोई विकल्प नहीं।

अमर, अविस्मरणीय व्यक्तित्व

वे अमर हैं और अमर रहेंगी। आखिर अमर होने का अर्थ यही न है कि जब आप देह रूप में नहीं भी हैं, तब भी लोग आपके नाम की प्रशंसा करें, आपकी कृति की चर्चा करें, आपका नाम और जीवन दूसरों को वैसा ही अच्छा काम करने की

प्रेरणा दे। अमर वे ही रहे जो अपने अलावा दूसरों के लिये जिये, जैसे स्वामी शिवानंद जी, स्वामी सत्यानंद जी और अम्माजी।

भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. अब्दुल कलाम ने लिखा है, 'जो तट से ममता तोड़ता है, वही अथाह सागर की संपदा पा सकता है। तट के बने रहोगे तो तट पर ही पड़े रहोगे, तट छोड़ोगे तभी सागर का ओर-छोर नाप सकोगे।'

अम्माजी ने भी अपना सब कुछ छोड़ा, उनका जीवन दूसरों के लिये था। उन्होंने भी तट छोड़कर लहरों से संघर्ष किया और अमर हो गयीं। जिसे गृहस्थ लोग पिसना कहते हैं, वे भी पिसीं, लेकिन जैसे दही बिलोते हैं तो मक्खन ऊपर आ जाता है, वैसे ही वे जीवन का सार तत्त्व निकालने में सफल हुईं।

उनका व्यक्तित्व बहुत ऊँचा था जिसे शब्दों से नापा-तौला नहीं जा सकता। एक विशाल वृक्ष की जड़ों की गहराई तक पहुँचना या उसकी सब से ऊँची डाल को छूना क्या आसान है? उनका जाना बरगद के पेड़ से गिरने जैसा है। ऐसी छाँव देने वाली माँ का मिलना बहुत कठिन है। उनके पास पहुँचकर हम शीतल छाँव, सुकून और अपनापन महसूस करते थे। उनके व्यक्तित्व की विशालता पर लिखना मेरे लिये बहुत ही कठिन है।

मैंने उन्हें स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य, दोनों क्षणों में देखा। दोनों ही परिस्थितियों में वे सम दिखती थीं, वे कभी भी डगमगाईं नहीं। मैं जब भी आश्रम में किसी की मुसीबत का जिक्र करती, भले ही रात के बारह बजे हों, उनका उत्तर होता था, 'बताओ मैं उनके लिये क्या कर सकती हूँ।' उनकी बातों में सच्चाई होती थी। वे

तोड़ने की नहीं, बल्कि हमेशा जोड़ने की बात करती थीं।

जो भी उनसे मिलने आता वे उन्हें यही आशीर्वाद देतीं–'सदा भवानी दाहिनी, सम्मुख रहे गणेश। पाँच देव रक्षा करें ब्रह्मा, विष्णु महेश।' आज भी वे मुझे यही आशीर्वाद दें, यही उनके चरणों में प्रार्थना है। उन्होंने मुझे बहुत कुछ सिखाया, अनेक ढंग से मुझे तराशा। यदि मैं शब्दकोष उठाती हूँ तो कोई भी ऐसा शब्द नहीं मिलता जो उनके विलक्षण व्यक्तित्व का सम्पूर्ण परिचय दे सके, सम्यक् गुणगान कर सके। बस कुछ पंक्तियों में अपना आभार प्रकट कर रही हूँ–

जब कभी रहनुमाओं की बात आई
यह दिल करेगा याद आपको योग पथ पर
जो कुछ सिखाया उसके लिये धन्यवाद आपको।

कितने भाग्यशाली होते हैं वे जो अपनी भौतिक और आत्मिक, दोनों आँखों से अपने गुरु के दर्शन कर पाते हैं। काश! मैं भी उन्हें देख पाती। मैं यह नहीं कहती कि स्वामीजी मेरे लिये कुछ नहीं हैं, वे तो मर्यादापुरुषोत्तम हैं और मर्यादा रखने के लिये एक युग में एक पुरुष ही काफी है। जैसे त्रेता युग में भगवान राम हुये, द्वापर में कृष्ण हुये, वैसे ही इस युग में स्वामी निरंजन हैं। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर जी की ये पंक्तियाँ उनके लिये सार्थक होती हैं–

मत डरो सन्त यह मुकुट नहीं माँगेगा
धन के निमित्त यह धर्म नहीं त्यागेगा।
तुम सोओगे तब भी यह ऋषि जागेगा
ठन गया युद्ध तो बम-गोले दागेगा।

जब भी आश्रम में कुछ कार्यक्रम होता है, लोग आते हैं कहते हैं, आज भी हमें अम्माजी की उपस्थिति का अनुभव होता है। लेकिन सच बताऊँ, मुझे उनका कोई अनुभव नहीं होता। मुझे लगता है उनके बिना कितने जन्म बीत गये और पता नहीं कितने युग और जीना है उनके बिना। इसी भाव को अंग्रेजी कवि, रॉबर्ट फ्रॉस्ट की कुछ पक्तियों के माध्यम से अभिव्यक्त कर रही हूँ, जिन्हें श्री हरिवंश राय बच्चन ने हिन्दी में अनूदित किया था–

गहन सघन मनमोहन वन तरु, मुझको आज बुलाते हैं,
किन्तु किये जो वादे मैंने, याद मुझे आ जाते हैं।
अभी कहाँ आराम बदा यह, मूक निमंत्रण छलना है,
और अभी तो मीलों मुझको, मीलों मुझको चलना है।

जीवन में पराग निखरेगा

निरंजन पराग,
तुममें जीवन है, सौरभ है,
और सुन्दरता का स्पन्दन है,
अवश्य इसे देते रहना।

पर पराग दूषित न हो जाए,
सतत् सतर्क रहना।

जीवन एक फूल है,
सत्यम्, मंगल, सुंदर,
इसमें सुगन्धि है,
पराग इसी में से बना है।

पशुता के आघात से
यह असमय बिखर गया!
मस्ती में डोल रहा था,
कोई फूल के साथ ही
इसे मिटाकर चला गया।

जीवन के पराग में नया जीवन है,
इसमें से अनेक जीवन पनपेंगे।
इसे सम्भाल कर रखना।
संयम, शील, सौजन्य
जीवन के पराग हैं,
परहित, करुणा, अनुकम्पा
इसे नवजीवन की बयार पहुँचाती है।
आत्म साधना से
पराग की विस्तृति, अमृति होती है।

मानव समाज में ईश्वर को खोजो,
कुष्ठियों, अन्धों, लंगड़ों को समझो,
प्रिय निरंजन पराग,
तुम विश्व को सुन्दर बना सकोगे।

–स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

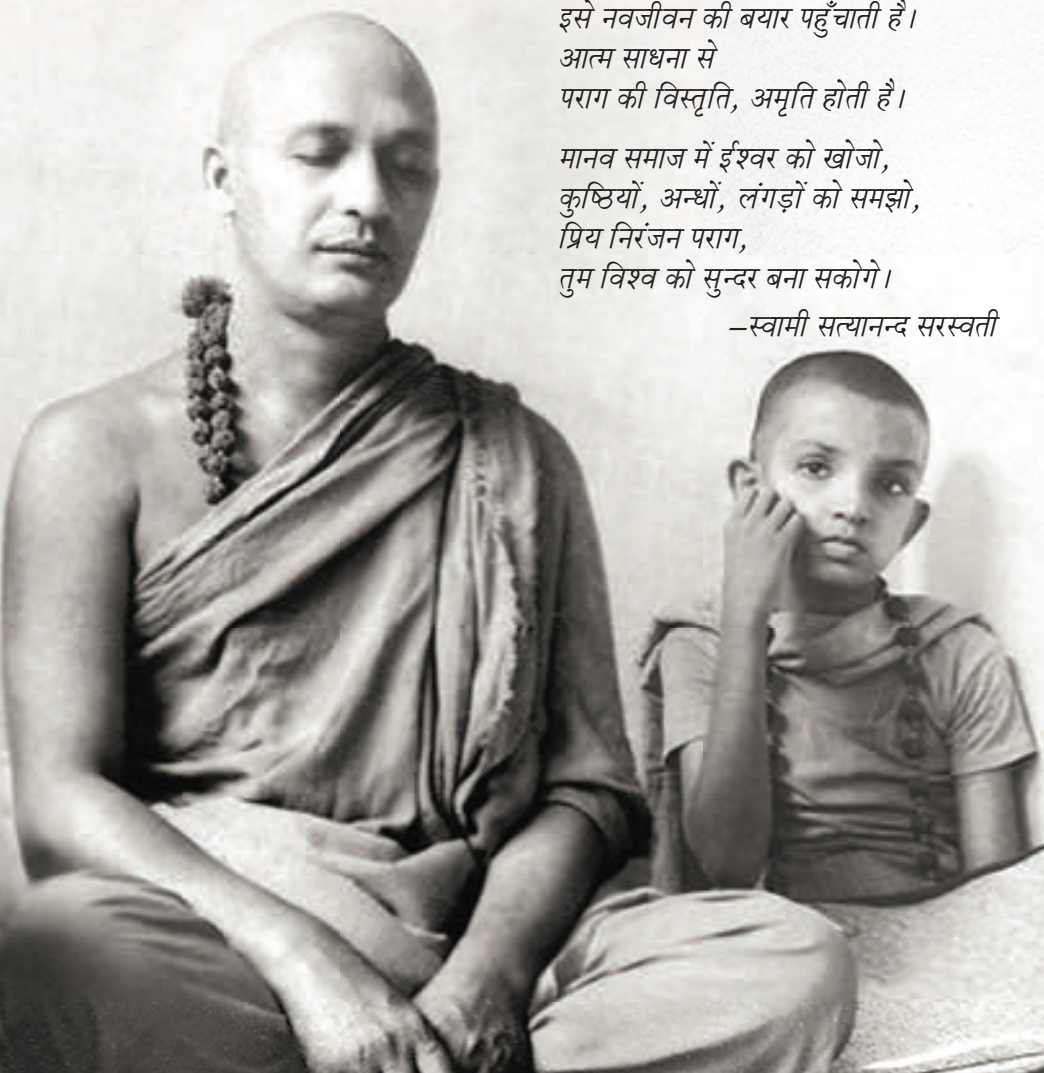

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

सत्यम् गाथा–ऋषि की पुनरपि प्रशस्ति

पृष्ठ 20

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती तथा श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को समर्पित सत्यम् गाथाएँ उनकी आध्यात्मिक एवं यौगिक शिक्षाओं को सरल, रोचक ढंग से दुनियाभर के लोगों तक पहुँचाने का माध्यम हैं।

एक नन्ही बालिका का गुरु के प्रति आकर्षण और समर्पण उसे गुरु के आश्रम तथा बाल-आन्दोलन का अभिन्न अंग बना देता है। गुरु के सान्निध्य और संरक्षण में उसका व्यक्तित्व निखरता जाता है, प्रसुप्त प्रतिभाएँ जागृत होने लगती हैं, जीवन को एक सकारात्मक दिशा मिलती है। यह उस बालिका की जीवन-कहानी है, जिसमें उसने अपने भाव-कुसुमों को काव्य-मालाओं में पिरोकर अपने ऋषि स्वरूप गुरु के पद्मभूषण-सम्मान के अवसर पर उनके चरणों में समर्पित किया है।

नया प्रकाशन

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें–
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
दूरभाष : 91-6344-222430, 6344-228603 फैक्स : 91-6344-220169

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

वेबसाइट

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट में सत्यानन्द योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

योगा एवं योगविद्या वेबसाइट

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ निम्नांकित वेबसाइट पर उपलब्ध हैं–

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ अब IOS उपकरणों पर नि:शुल्क एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं। इस एप्प को निम्नांकित वेबसाइट से डाउनलोड किया जा सकता है–
https://itunes.apple.com/us/developer/bihar-school-of-yoga/id1134424786
यह एप्प बिहार योग विद्यालय द्वारा सभी योग साधकों के लिए प्रसाद स्वरूप है।

आवाहन वेबसाइट

www.biharyoga.net/sannyasa-peeth/avahan/ पर संन्यास पीठ की द्वैमासिक पत्रिका, *सत्य का आवाहन* उपलब्ध है, जिसमें श्री स्वामी शिवानन्द, श्री स्वामी सत्यानन्द एवं स्वामी निरंजनानन्द की शिक्षाओं तथा संन्यास पीठ की गतिविधियों की जानकारी है।

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. MGR-01/2017
  Office of posting: Ganga Darshan TSO
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2018

फरवरी 22- जून 10	चातुर्मासिक योग अध्ययन सत्र (हिन्दी)
फरवरी 14	बाल योग दिवस
अप्रैल 8-14	हठ योग यात्रा 1 एवं 2
अप्रैल 22-28	हठ योग यात्रा 3
अगस्त 6-11	क्रिया योग यात्रा 1
	क्रिया योग यात्रा 2 एवं तत्त्व शुद्धि
अगस्त 20-25	क्रिया योग यात्रा 3 एवं तत्त्व शुद्धि 2
सितम्बर 17-23	राज योग यात्रा 1, 2 एवं 3
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 5 एवं 6 तारीख	श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें-
बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
फोन : 06344-222430, 06344-228603 फैक्स : 06344-220169
वेबसाइट : www.biharyoga.net
✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।